मास्टर ऑफ आर्ट्स (इतिहास)

एम.ए. (इतिहास)
द्वितीय वर्ष

मध्यकालीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास

(द्वितीय प्रश्न पत्र)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट (सतना) म.प्र. - ४८५३३४

मध्यकालीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास

ई–संस्करण 2023–24 / MAHS-II-123

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :

प्रो. भरत मिश्र

कुलपति

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

पाठ्यक्रम निर्माण

डा. अभय वर्मा

पाठ्यक्रम संयोजक

डा. त्रिभुवन सिंह

पाठ्यक्रम अभिकल्पना एवं सम्पादक मण्डल :

डा. त्रिभुवन सिंह डॉ. कमलेश थापक

डॉ. अभय वर्मा डॉ. नीलम चौरे

मुद्रण प्रस्तुति

डॉ. सन्तोष अरसिया, उपकुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

सन्तोष राजपूत, सहायक कुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

सम्पर्क सूत्र :

डॉ. कमलेश थापक, निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

दूरभाष– 07670–265460, E-mail – directordistancemgcgv@gmail.com, website : www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

प्राक्कथन...

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की तपोस्थली, मंदाकिनी नदी के सुरम्य तट पर स्थापित महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय भारतरत्न नानाजी देशमुख के शैक्षिक चिंतन और संकल्पों की जीवंत अभिव्यक्ति है, जो म.प्र.शासन द्वारा 12 फरवरी, 1991 को विशेष अधिनियम 09, 1991 द्वारा स्थापित हुआ।

विश्वविद्यालय का ध्येय वाक्य है–'विश्वं ग्रामे प्रतिष्ठितम्' अर्थात ग्राम विश्व का लघु रूप है। विश्वविद्यालय चित्रकूट में स्थित है, जो एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। नई पीढ़ी के लिये यह स्थान आदर्श एवं प्रेरणा का केन्द्र है।

विश्वविद्यालय में कृषि, प्रबंधन, अभियांत्रिकी, लोक विज्ञान, ग्रामीण विकास एवं स्थानीय स्वशासन, लोक शिक्षा, कला, संस्कृति एवं साहित्य सहित सभी अकादमिक धारायें प्रभावी रूप में उपस्थित हैं। विश्वविद्यालय, ग्राम को समाज जीवन की मूल इकाई मानकर शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध और प्रसार कार्यों से सर्वांगीण विकास के लिए विगत 3 दशकों से अधिक समय से समर्पित प्रयास कर ग्रामोदय से राष्ट्रोदय के संकल्प में लगा हुआ है। विश्वविद्यालय ने अपनी गतिविधियों और कार्यक्रमों के माध्यम से कौशल विकास के उन्नयन एवं प्रमाणन तथा सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है तथा शासन के सहयोगी के रूप में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

प्राचीन एवं सनातन भारतीय ज्ञान की परम्परा के आलोक में आई, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 चिरवांछित जन आकांक्षाओं की सम्यक् अभिव्यक्ति है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के युगान्तरकारी प्रावधानों को लागू करने में मध्यप्रदेश अग्रणी राज्य रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने नवाचारों के लिए सकारात्मक और अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराया है। विद्यार्थियों की पठन–पाठन की स्वतंत्रता, कौशल विकास के समुचित अवसर तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार आने वाले भविष्य के लिए तैयार करने की प्रतिबद्धता राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों में स्पष्टतः दिखाई देती है।

विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों को दूरवर्ती के विभिन्न पाठ्यक्रमों में अर्थपूर्ण रूप से जोड़कर इन्हें सत्र 2023–24 से पुनः संशोधित/परिवर्धित रूप में प्रारम्भ किया है। विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के प्रसार एवं रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु दूरवर्ती माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष प्रयास कर रहा है। दूरवर्ती पद्धति से संचालित विभिन्न पाठ्यक्रमों में नियमित संपर्क कक्षाओं के आयोजन, उच्च शिक्षा की स्व–अध्ययन सामग्री एवं नई शैक्षिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए शिक्षार्थी को बेहतर शैक्षणिक अनुभव प्रदान करने की व्यवस्था सुनिश्चत की जा रही है।

विश्वविद्यालय के दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र द्वारा सत्र 2024–25 में संचालित परास्नातक, स्नातक तथा डिप्लोमा स्तरीय दूरवर्ती पाठ्यक्रमों के शिक्षार्थियों हेतु ई–स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री प्रस्तुत करते हुये मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है।
पाठ्यक्रम से जुडे सभी शिक्षार्थियों, अभिभावकों, प्रशासकों, समन्वयकों और अन्य सभी को मेरी मंगलकामनायें

प्रो. भरत मिश्रा
कुलपति

बीसवीं सदी का विश्व

मध्यकालीन भारतीय समाजिक एवं आर्थिक इतिहास

(द्वितीय प्रश्नपत्र)

अनुक्रमणिका

अध्याय–1 :पूंजीवाद का विकास

अध्याय–2 :साम्राज्यवाद का विकास

अध्याय–3 :राष्ट्रवाद

अध्याय–4 :प्रथम विश्वयुद्ध और शान्ति समझौता

अध्याय–5 : रूसीक्रान्ति

अध्याय–6 : राष्ट्रसंघ

अध्याय–7 : सामूहिक सुरक्षा और पूंजीवाद का संकट

अध्याय–8 : उदारवादी तथा सामाजिक आन्दोलन– फासीवाद और नाजीवाद

अध्याय–9 : द्वितीय विश्वयुद्ध

अध्याय–10 : द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन और उपनिवेशवाद की समाप्ति

अध्याय–11 : शीतयुद्ध और उसके प्रभाव

अध्याय–12 :गुट निरपेक्ष आन्दोलन और तृतीय विश्व

अध्याय–1 : संयुक्त राष्ट्रसंघ और विश्वशान्ति

अध्याय–1 : प्रगति का युग–आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, सांस्कृतिक

अध्याय–1 : नागरिक अधिकार, प्रजाति पार्थक्य और नारीवाद

अध्याय–1 : समाजवादी गुट का विघटन

अध्याय–1

पूँजीवाद का विकास

पूँजीवाद

पूँजीवाद एक ऐसा लोकचार है, जिसका मूलतंत्र अधिक से अधिक धन की प्राप्ति करना है पूंजीवाद में साधन इतना महत्वपूर्ण नही है जितना कि साध्य। पूंजीवाद के जीवन का साध्य धन अर्जित करना होता है और इसे वह अपना नैतिक कर्तव्य मानता है। अधिकाधिक धन कमाने के उद्देश्य से व्यापक पैमाने पर उत्पादन एवं उत्पदन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व ही पूंजीवाद का आधिक्य है। इस व्यवस्था में उत्पादक अथवा श्रमिक का कोई स्वामित्व नही होता है। श्रमिक का श्रम ही आजीविका का साधन होता है। सामान्यतया श्रमिकों को श्रम का सम्पूर्ण पारिश्रामिक प्रदान नही किया जाता है।

हॉब्सन के अनुसार, ''पूंजीवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें नियोजक या नियोजकों की कम्पनी द्वारा बड़े पैमाने पर व्यवसाय का संगठन किया जाता है और वे अपनी संचित सम्पत्ति का उपयोग लाभ कमाने के उद्देश्य से परिवर्द्धित परिणाम में उत्पादन करने के लिए कच्चा माल उपकरण और श्रम खरीदने के लिए करते हैं।''

अतः कहा जा सकता है कि पूंजीवाद वह व्यवस्था है जिससे बड़े पैमाने पर व्यवसाय का संगठन किया जाता है, संगठनकर्ता एक ही व्यक्ति हो सकता है अथवा एक से अधिक व्यक्तियों का संगठन। संगठनकर्ता के पास पर्याप्त मात्रा में संचित या अर्जित धनराशि का होना आवश्यक है जिससे कि उत्पादन के साधनों एवं श्रमिकों की व्यवस्था की जा सके।

इंग्लैण्ड एवं अन्य यूरोपीय राज्यों में पूंजीवाद का विकास

प्रारम्भ में पूंजीवाद का विकास उन देशों में हुआ जो शासन की दृष्टि से अपेक्षाकृत उदार थे। नीदरलैण्ड में संयुक्त प्रान्तों के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करलेने के बाद सामन्तवाद का अन्त हो गया और भूमि का अधिकांश हिस्सा बुर्जुआ वर्ग के हांथों में आ गया।

सोलहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में भी पूंजीवाद का विकास प्रारम्भ हो गया था। इंग्लैण्ड में इस काल में पूंजीवाद के विकास के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे–

1. ट्यूटर काल में तीव्रता से विकसित होते विदेशी व्यापार ने धन की आवश्यकता को जन्म दिया।

2. जमीदार घराने के नवयुवकों ने शहरी व्यापारी वर्ग के साथ संलग्न होकर व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया।

3. आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में तीव्रतापूर्वक वृद्धि हुई।

4. इस दौरान व्यापक स्तर पर भूमि क्रय–विक्रय हुआ।

5. विस्तृत घरेलू बाजार के विकास ने भी पूंजीवाद के विकास में सहयोग दिया।

यूरोप में पूंजीवाद के उदय के कारण रू यूरोप में पूंजीवाद के लिए निम्नलिखित परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं–

(1) धातुओं में प्रचुरता (Ptenty of Metals) – लोहा कृषि एवं उद्योग के लिए एक आवश्यक धातु में खनन प्रविधियों में सुधार आने से सोना–चांदी टिन, सीसा आदि धातुएँ भी प्रचुरता में उपलब्ध होने लगी।

(2) जल परिवहन में सुधार (Reform in Water Transportation) – जल परिवहन में व्यापक परिवर्तनों से औद्योगिक विकास प्रोत्साहित हुआ। जहाँ एक ओर कुतुबनुमा की सहायता से दूर–दूर तक की यात्राएँ करना संभव हो सका वहीं दूसरी ओर अब वायु की गति के विरुद्ध भी यात्रा करना सम्भव हो सका।

(3) श्रम विभाजन (Division of Labour) – श्रेणी प्रणाली में नवीन लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे थे। उत्पादन प्रक्रियाओं में कार्य विभाजन हो गया था। इसप्रकार विभिन्न श्रेणियों में श्रम विभाजन हो गया। ये श्रेणियाँ कमजोर होने के व्यवसायिक वर्ग पर अधिकाधिक निर्भर होती गयी।

(4) उत्पादक साधनों में सुधार (Improvement in Means of Production) – यूरोप की विभिन्न विनिमर्श शालाओं में अधिक से अधिक बेहतर उपकरण बनाने की भी प्रतिद्वन्दिता प्रारम्भ हो गयी थी। जिसके कारण अधिकउन्नत उपकरणों का निर्माण एवं उत्पादन साधनों में सुधार संभव हो सका।

(5) बैंकिंग व्यवस्था (Banking System) – व्यवसाय का विस्तार होने पर पूंजीगत साधनों की आवश्यकता में वृद्धि हुई। जिसके कारण महाजनी व्यवस्था का विस्तार तथा अन्ततः बैंकिंग का प्रादुर्भाव हुआ। 16वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, स्वीडन हालैण्ड में बैंकिंग व्यवस्थाएँ स्थापित हुई। 17वीं शताब्दी में एमस्टर्डन बैंक में यूरोप के अधिकांश देश ब्याज पर धन जमा कराते थे।

सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक इंग्लैण्ड में पूंजीवाद का पर्याप्त विकास हो चुका था इस काल की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थींपर निर्भर नहीं कर रहा था–

1. कोई भी वर्ग किसी एक ही व्यवसाय

2. जमींदार भूमि से प्राप्त होने वाली आय को अधिकाधिक व्यापार में लगाना चाहते थे।

3. कृषि का औद्योगिक उत्पादन पूंजीवाद में परिवर्तित होने लगा था।

4. सन् 1660 से 1760 के मध्य कृषि तकनीक में आश्चर्यजनक परिवर्तन होगये थे इन परिवर्तनों ने पूंजीवाद को सशक्त आधार प्रदान किये।

5. इंग्लैण्ड में सशक्त एवं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक पूंजीपति वर्ग अस्तित्व में आ गया।

इस प्रकार प्रारम्भिक पूंजीवाद के काल में इंग्लैण्ड फ्रांस व नीदरलैण्ड जैसे देशों ने चहुंमुखी उत्पादन की दिशा में प्रगति की जबकि स्पेन, पुर्तगाल व इटली पर्याप्त विकास नहीं कर पाये।

जर्मनी एवं नीदरलैण्ड में पूंजीवाद का विकास 16वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। 1368 ई. में जर्मनी का जॉन फग्गर नामक बुनकर जीविकोपार्जन की तलाश मेंऑग्सवर्ग आया। उसने एक नये प्रकार के वस्त्र का उत्पादन किया जो कि सूती व ऊनी वस्त्र की अपेक्षा पहनने में सुविधाजनक था। उसके कपड़े की दूर–दूर तक मांग होने लगी। कपास लोन के लिए उसे वेनिस जाना पड़ता था, वहाँ से वह रेशमी वस्त्र, मसाले व अन्य सामान भी लाने लगा। जिससे उसके व्यापार की निरन्तर वृद्धि हुई। पुनर्जागरण काल में फग्गर परिवार ने महाजनी का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। 1546 ई. तक इस परिवार की पूंजी 40 लाख स्वर्ण मुद्रा तक पहुँच गयी थी। 116वीं सदी के अन्तिम दशक में जर्मनी के आर्थिक हास के साथ–साथ इस परिवार की भी अवनति होती चली गयी। जर्मनी के समान नीदरलैण्ड में भी इस युग में पूंजीवाद का विकास हुआ। नीदरलैण्ड का एण्टवर्प नामक नगर प्राचीन एवं नवीन जलमार्गों के संगम पर स्थित है। यहाँ विभिन्न देशों के द्वारा अपनी महाजनी शाखाएँ स्थापित कर ली गयी थीं। आधुनिक पूंजीवाद की अनेक संस्थाओं का जन्म एण्टवर्प में ही हुआ। यह विश्व का पहला सट्टा बाजार था जहाँ मुद्रा व माल का व्यापक पैमाने पर लेन–देन होता था। यह बीमा का भी सबसे बड़ा केन्द्र था।

जापान में पूंजीवाद का विकास

जापान में भी पाश्चात्य पूंजीवाद का अनुसरण करते हुये अपने औद्योगिक विकास की ओर ध्यान दि या जापान में पूंजीवाद के विकास के लिए कारक उत्तरदायी थे–

(1) सुनियोजित आर्थिक विकास (Well Planned Economic Development) – जापान ने पाश्चात्य देशों का अनुसरण करते हुए औद्योगिक क्रान्ति को सफल बनाया। जापान के तीव्र आर्थिक विकास में निम्नलिखित कारकों का योगदान रहा अनुशासित एवं परिश्रमी जनशक्ति, सादा रहन–सहन, राष्ट्रहित की भावना एवं सरकार की उद्योगों के प्रति जागरूकता।

(2) औद्योगिक क्षेत्र में प्रगति (Progress in Industrial Field)– जापान में सरकार ने विदेशी पूंजी स्वयं उधार लेकर निजी उद्योगों को सहायता के रूप में दी। सन् 1870 में उद्योग मंत्रालय की स्थापना की गयी। 1880 ई. तक आठकोयले की खाने आरंभ की जा चुकी थीं। इस काल में सोने चांदी की खानों का 90 प्रतिशत जापान के हाथो में था।

(3) मुद्रा एवं बैंकिंग प्रणाली का विकास (Development of CurrencyAnd Banking System) – शोगुन शासनकाल में कागज व धातु की कई प्रकार की मुद्राएँ प्रचलित थीं। किन्तु नये केन्द्रीय शासन में एक रूप राष्ट्रीय मुद्रा का होना आवश्यक था। 1872 ई. में अमेरिकी पद्धति पर एक राष्ट्रीय बैंक की स्थापना की गयी। तथा 1881 ई. में ठंदा वि श्रंचंद की स्थापना की गयी। 1896 ई. में राष्ट्रीय बैंकों को निजी बैंकों में परिवर्तित कर दिया गया।

(4) कृषि में सुधार (Improvement ofAgriculture) – कृषकों को उस भूमि का स्वामी बना दिया जाता जिस पर वे सामन्तों के लिए कृषि करते थे। कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना एवं कृषि समितियों का गठन किया गया। भूमिकर नकद के रूप में लिया जाने लगा।

(5) यातायात के साधनों के विकास (Devlopment of Means of Pranspcert) – जापान में यातायात के साधनों के विकास ने भी पूंजीवाद के विकास को प्रोत्साहित किया।

अध्याय–2

साम्राज्यवाद का विकास

साम्राज्यवाद का अर्थ (Meaning of Imperiasising)

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के मध्य शक्ति संघर्ष में तथा अपने भू–क्षेत्र से बाहर अपनी शक्ति का विस्तार करने के लिए विभिन्न देशों द्वारा साम्राज्यवाद का प्रयोग एक प्रभावशाली साधन के रूप में किया गया। साम्राज्यवाद का प्रयोग जहाँ एक ओर राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति के लिए किया गया वहीं दूसरी ओर पिछड़े वर्ग के लोगों के जीवन को उन्नत एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए भी किया गया। एशिया व अफ्रीका के पिछड़े लोगों को ईसाई बनाने में भी साम्राज्यवादी नीतियाँ सहायक सिद्ध हुई।

साम्राज्यवाद शब्द का प्रयोग बहुत ही अस्पष्ट एवं मनमाने तरीके से किया जाता है। साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा अपनी साम्राज्यवादी नीतियों को न्यायसंगत नीतियाँ कहा गया जबकि विरोधियों द्वारा इन नीतियों की आलोचना की गई। साम्राज्यवाद की प्रक्रियाएँ 20वीं शताब्दी के मध्य तक चलती रहीं तथा साम्राज्यवादी देशों की विदेश नीतियों का मूलाधार अपने राज्यों का विस्तार करना था। 1940 के बाद से साम्राज्यवादी नीतियों का परित्याग किया जाने लगा। चार्ल्स ए. बीयर्ड के मतानुसार, ''साम्राज्यवाद में एक देश की सरकार और कूटनीतिक मशीनरी दूसरी जाति के लोगों के प्रदेशों रक्षित राज्यों तथा प्रभाव क्षेत्रों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो जाती है और अपने लिए औद्योगिक व्यापारिक एवं धन लगाने के अवसरों को बढ़ाने के कार्य करती है।''

साम्राज्यवाद के प्रेरक तत्व (Motives of Imperialism) : साम्राज्यवाद की नीति के अन्तर्गत अन्य राज्यों पर शासन स्थापित करके कई सम्भावित लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं।

साम्राज्यवाद के प्रमुख प्रेरक तत्वनिम्नलिखित हैं–

1. शक्ति एवं प्रतिष्ठा (Power and Prestige) – अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों में शक्ति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करना साम्राज्यवादी नीति का प्रमुख प्रेरकतत्व रहा है।

यह साम्राज्यवाद का मनोवैज्ञानिक प्रेरक है। मुसोलिनी ने भी कहा थाष्फासीवादी राज्य, शक्ति तथा साम्राज्य की इच्छा है। रोम निवासियों की परम्परा बल पर विश्वास है। फासीवादी सिद्धांत में साम्राज्यशाही के विचार में केवल क्षेत्र, सेना तथा वाणिज्य विस्तार ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक तथा नैतिक विस्तार भी सम्मिलित हैं।" फासीवादी धारणा के अनुसार, ''साम्राज्यशाही विचार की प्रवृत्ति का अर्थ राष्ट्र का विस्तार तथा शक्ति की अभिव्यक्ति है।'' इसी प्रकार श्वेत जाति का कथन है कि श्ब्रिटिश साम्राज्य का सूर्य कभी नहीं छिपता, प्रतिष्ठा का द्योतक है।

2. लोकोपकारी प्रेरक (Humanitarian Moteve) – साम्राज्यवाद के समर्थकों की मान्यता है कि यह धारणा निर्धनों एवं पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाने के लिए लोकोपकारी तत्व से प्रेरित है। यही कारण है कि यह धारणा श्श्वेत आदमी का उत्तरदायित्वश के नाम से भी प्रचलित है। इस धारणा के समर्थक पिछड़े वर्गों की दासता से मुक्त कराने एवं अपना धर्म देकर सुसंस्कृत बनाने में विश्वास करते हैं। इसी आधार पर यूरोपीय श्रेष्ठता को अफ्रीका एवं एशिया में लागू करने का प्रयत्न किया गया। वास्तव में लोकोपकारी प्रेरकों का प्रयोग साम्राज्यवादियों द्वारा अपने लिए किया जाता है। पी.टी. मून ने लोकोपकारी प्रेरक की आक्रामक परोपकारिता (AggressiveAltruisim) का नाम दिया है।

3. आर्थिक लाभ (Economic Gains)– साम्राज्यवाद के प्रेरक तत्वों में से एक महत्वपूर्ण प्रेरक तत्व श्आर्थिक लाभ की प्राप्ति है। साम्राज्यवाद की नीति को अपनाने के ये प्रेरक तत्व इस प्रकार कच्चे माल की प्राप्ति हेतु, माल का विक्रय करने के लिए, मण्डियों की तलाश में, अतिरिक्त पूंजी निवेश हेतु नये क्षेत्रों की चाह आदि।

डॉ. शाच के अनुसार, ''विश्व की राजनीति में होने वाले अधिकांश संघर्षों का आधार कच्चे माल की प्राप्ति रहती है।'' कच्चे माल की आवश्यकता साम्राज्यवादी नीति का एक प्रमुख कारण है। इसी प्रकार अतिरिक्त वस्तुओं का विक्रय करने के लिए मण्डियों की तलाश रहती है ऐसे में उपनिवेशों की मण्डियाँ पिछड़ेपन केकारण बड़ी–बड़ी उपभोक्ता मण्डियों बन जाती हैं। साथ ही साम्राज्यवादी शक्तियों के आकर्षण का केन्द्र रहती है। ऐसे क्षेत्र में पूंजी निवेश के भी पर्याप्त अवसर प्राप्त होते हैं।

4. राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय सुरक्षा (Nationalism and National Defence) – राष्ट्रवाद भी साम्राज्यवाद के मूल – प्रेरकों में से एक है। वस्तुतः आक्रामक राष्ट्रवाद सदैव साम्राज्यवाद को जन्म देता है। साम्राज्यिक क्षेत्रों के मानवीय एवं भौतिक साधनों पर नियंत्रण एक बड़ी सीमा तक साम्राज्यवादी शक्तियों की अन्य के साथ युद्ध के समय अपनी रक्षा करने की योग्यता को प्रोत्साहित करता है। उदाहरणार्थ रू दो विश्व युद्धों के मध्य ब्रिटेन अपने साम्राज्य की सुरक्षा से सम्बंधित आवश्यक साधनों के लिए भारत पर निर्भर था। इसी प्रकार प्रथम विश्व युद्ध के दौरान फ्रांस ने अपने उपनिवेशों से एक बड़ी मात्रा में सैन्य सहायता प्राप्त की।

5. अतिरिक्त जनसंख्या को बसाना (To ProvideA Place to Surplus Population) – अपने राष्ट्र की अतिरिक्त जनसंख्या को अन्य क्षेत्रों अथवा उपनिवेशों में बसाना भी साम्राज्यवाद के कारकों में से एक है। जर्मनी, इटली, जापान ने इसी आधार पर अपनी साम्राज्यवादी नीति को उचित ठहराया।

उपरोक्त प्रेरक तत्वों के अतिरिक्त साम्राज्य कतिपय अन्य प्रेरक तत्वों से भीं प्रोत्साहित होता है। इनमें से कुछ इस प्रकार है– किसी धर्म विशेष का प्रचार करना, शक्ति सन्तुलन बनाये रखने की आवश्यकता, अन्य राष्ट्रों को सैद्धांतिक क्रांति नियति करने की इच्छा आदि। साम्राज्यवाद के इन प्रेरक तत्वों को साम्राज्यवाद के लाभ अथवा उपलब्धियाँ भी कहा जा सकता है।

अफ्रीका में फ्रांसीसी साम्राज्यवाद (French Imperialism isAfrica) – सन् 1847 ई. में फ्रांस ने अल्जीरिया पर संरक्षण स्थापित किया। पश्चिमी तट पर सेनेगल (Senegal),

आइवरी कोस्ट (Ivory Coast) एवं गेबून (Gabun) पर भी फ्रांस का आधिपत्य था। बेल्जियम के लियोपोल्ड द्वारा कांगों की घाटी में अपनाप्रभाव क्षेत्र स्थापित करने के प्रयत्न स्वरूप फ्रांस ने भी कांगों के दक्षिणी भाग को अधिकृत करना प्रारम्भ किया।

सन् 1882 ई. से मिस्त्र के मामले के कारण ब्रिटेन व फ्रांस के सम्बंध तनावपूर्ण हो गये थे। 1884 ई. में ब्रिटेन द्वारा कांगों नदी के मुहाने पर पुर्तगाल का अधिकार स्वीकार कर लेने से ये सम्बन्ध और भी कटु हो गये। बेल्जियम और जर्मनी ने भी फ्रांस का समर्थन किया। जुलाई 1884 ई. में इस समस्या पर विचार करने हेतु एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आमन्त्रित किया गया।

यह बर्लिन सम्मेलन नवम्बर 1884 ई. से फरवरी 1885 ई. तक चला। इसमें स्विटजरलैण्ड को छोड़कर यूरोप के अन्य सभी राष्ट्र तथा अमेरिका सम्मिलित हुए। सम्मेलन की आचार संहिता के अनुसार कांगों घाटी में सभी राज्यों को व्यापार व नौ–चालन की स्वतंत्रता प्रदान की गई। एवं नाइजर नदी के निचले भाग पर फ्रांस का नियन्त्रण रहेगा।

फ्रांस, मोरक्को के पूर्व में स्थित ट्यूनिए पर तथा उसके दक्षिण में गोम्बिया पर अधिकार कर चुका था। अतः वह मोरक्को पर भी अधिकार करना चाहता था। 1901 ई. में फ्रांस व मोरक्को के मध्य एक समझौता हुआ जिसके. अनुसार दोनों देशों ने सीमा पर शान्ति बनाये रखने के लिए पुलिस की व्यवस्था की। 1904 में इंग्लैण्ड ने मोरक्कों में फ्रांस के विशेष हितों को मान्यता प्रदान की। बदले में फ्रांस ने मिस्त्र ने इंग्लैण्ड के हितों को स्वीकार किया। सन् 1906 ई. में एल्जेसिरास में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ जिसमें मोरक्को की स्वतंत्रता की पुष्टि की गई तथा मोरक्को में फ्रांस विशिष्ट हितों को मान्यता प्रदान की गयी। इस प्रकार अफ्रीका के उत्तर पश्चिमी प्रदेश में फ्रांस ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्यवाद (British Imperialism inAfrica) – उन्नीसवीं शताब्दी की औपनिवेशक प्रतिस्पर्द्धा विशेष रूप से अफ्रीका से प्रारम्भ हुई। सन् 1814 में ब्रिटेन ने हालैण्ड से कैम्प कालोनी का प्रदेश प्राप्त कर लिया था। यहाँ बड़ी संख्या में उच्च कृषक थे जो कि बोअर कहलाते थे। अंग्रेजों द्वाराडच संस्कृति के स्थान पर अंग्रेजी संस्कृति स्थापित करने के प्रयास के कारण ये परम्परावादी बोअर अंग्रेजों के विरुद्ध हो गये। 1833 ई. में जब अंग्रेजों ने दास प्रथा को समाप्त करने की घोषणा की तो बोअर केप कालोनी छोड़कर नेटाल जाकर बस गये। 1877 में इंग्लैण्ड ने ट्रांसवाल को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। परिणामस्वरूप बोअरो ने पॉल क्रूगर के नेतृत्व में विरोध करना आरम्भ किया। 1880 ई. में ग्लेडस्टन ने समझौते का प्रयास किया किन्तु बोअरों के मध्य एक सन्धि भी सम्पन्न हो गई। 1886 ई. में यह ज्ञात होने पर कि ट्रांसवाल में सोने की खाने हैं। एक बड़ी संख्या में अंग्रेज खनिक वहाँ पहुंचने लगे तथा शनैः शनैः उनकी संख्या बोअरी से अधिक हो गई।

सेसिल रोड नामक पूंजीपति ने दक्षिणी अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना की थी बहुत अधिक महत्व दिया। 1884 ई. में जर्मनी द्वारा दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका पर अधिकार कर लेने पर उसने ब्रिटिश सरकार को बेचुआनालैण्ड तथा सेन्ट लूसिया की खाड़ी पर अधिकार करने के लिए प्रेरित किया। केप–कालोनी से नेटाल, ऑरेन्ज–फ्री–स्टेट तथा

ट्रांसवाल तक की रेल लाइन बनाई गई। 1889 ई. में सेसिल रोड्स ने श्ब्रिटिश साऊथ अफ्रीका कम्पनीश की स्थापना की जिसे ट्रांसवाल की सीमा के उत्तरी क्षेत्र में ब्रिटिश शासन स्थापित करने का अधिकार दिला दिया। उसी के नाम पर यह क्षेत्र 'रोडेशियाश कहलाया। 1890 ई. में उसे केप कॉलोनी का प्रधानमंत्री चुना गया। वह ट्रांसवाल तथा ऑरेन्ज–फ्री–स्टेट पर भी अधिकार करना चाहता था। परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार तथा ट्रांसवाल एवं ऑरेन्ज–फ्री–स्टेट के मध्य बोअर युद्ध हुआ। इस युद्ध में अन्ततः बोअरों की आत्मसमर्पण करना पड़ा तथा मई 1902 ई. में वेरीनिगिंग की सन्धि (Treaty of Vereeniging) सम्पन्न हुई।

मिस्र (Egypt) – मिस्र में ब्रिटेन की दिलचस्पी मुख्य रूप से स्वेज नहर में थी। मिस्र की अर्थव्यवस्था बिगड़ने पर मिस्र के शासक इस्माइल पाशा ने स्वेज नहर के शेयर ब्रिटिश सरकार को 40 लाख पौण्ड में बेंच दिये। स्वेज नहर पर नियंत्रण होने से एशिया पर आधिपत्य स्थापित करना सरल था। इससे भारतपहुचना भी सरल था। मिस्र की अर्थव्यवस्था अब और अधिक डगमगाने लगी थी जिसके कारण 1876 ई. में इस्माइल पाशा ने विदेशी ऋणों को चुकाना स्थगित कर दिया। परिणामस्वरूप मिस्र की आय–व्यय पर ब्रिटेन व फ्रांस का प्रभाव स्थापित हो गया। इस्माइल पाशा द्वारा विरोध करने पर दोनों देशों ने उसकी पदच्युत करके तोफीक को सिंहासनारूढ़ किया। किन्तु मिस्र की अर्थव्यवस्था निरन्तर शोचनीय होती गई जिसके कारण 1882 ई. में मिस्र वासियों ने अराबी–बे के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया उनका नारा थाश मिस्र मिस्रवासियो के लिए। इंग्लैण्ड ने मिस्र को पराजित करके वहाँ अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। फ्रांस ने प्रारंभ में इसका विरोध किया किन्तु 1904 में मिस्र पर ब्रिटिश आधिपत्य की मान्यता प्रदान कर दी। 1919 ई. तक मिस्र ब्रिटेन का ही उपनिवेश बना रहा।

अफ्रीका में जर्मन साम्राज्यवाद (German Imperialism InAfrica)– अफ्रीका का विभाजन यूरोपीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। सर्वप्रथम बेल्जियम ने अपनी रुचि प्रदर्शित की।

जर्मनी में फ्रेडरिक फेब्री और दुवेश्लेडन ने उपनिवेश स्थापना के लिए आन्दोलन किये। बिस्मार्क ने पूंजीपतियों एवं उच्च, मध्यम वर्ग का समर्थन प्राप्त करने के लिए उपनिवेश स्थापना की मांग को स्वीकृत कर लिया। 1882 ई. में जर्मनी के एक व्यापारी ल्यूडरिक ने जर्मन सरकार की सहायता से दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका में एंग्रा पेक्वेना के क्षेत्र में कुछ भूमि प्राप्त कर ली तथा वहाँ जर्मनी का झंडा फहरा दिया गया बिस्मार्क द्वारा भेजे गये डॉ० नाक्टिगाल ने कैमरून तथा टोगोलैण्ड पर जर्मनी का ध्वज फहरा दिया। ब्रिटेन ने कैमरून पर जर्मनी के नियंत्रण को स्वीकार कर लिया।

सन् 1884 ई. में कार्ल पीटर्स ने पूर्वी अफ्रीका के तटवर्ती 60,000 वर्ग मील के क्षेत्र को अधिकृत कर लिया। इंग्लैण्ड ने इस क्षेत्र पर जर्मनी के अधिकार की स्वीकार किया। तत्पश्चात् जर्मनी ने आसपास के क्षेत्रों को भी अधिकृत कर लिया। इस प्रकार श्जर्मन पूर्वी अफ्रीका के प्रदेशों का निर्माण हुआ।

उदारवाद – अर्थ व विशेषतायेंरू उदारवाद का अर्थ मर्यादित स्वतंत्रता एवं समानता से है। उदारवादियों का लक्ष्य विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं की सुरक्षा को

सुनिश्चित करना एवं अधिकांश क्षेत्रों को नियंत्रण से मुक्त करना है। सैद्धांतिक रूप से उदारवाद अठारहवीं शताब्दी के निरंकुश शक्ति की कड़ी आलोचना की। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर आज तक उदारवाद के स्वरूप में कई परिवर्तन आये हैं। लोकतंत्र की अवधारणा उदारता की पर्यायवाची मानी जाती है। उदारवाद अपने युग की एक महान विचारधार रही है।

उदारवाद और समाजवाद

उदारवादी विचारधारा का सर्वप्रथम व्यवस्थित विकास इंग्लैण्ड में हुआ। राजनीतिक सिद्धांत के रूप में उदारवाद का प्रारम्भ हॉन्स के द्वारा किया गया इसका स्पष्ट स्वरूप लॉक की रचनाओं में देखने को मिलता है। उदारवाद के विकास में माण्टेस्क्यू का विशेष योगदान रहा। अठारहवीं शताब्दी के उदारवाद ने मुक्त व्यापार तथा ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें राज्य का हस्तक्षेप न हो का समर्थन किया। इस प्रकार का उदारवाद नकारात्मक उदारवाद कहलाया।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सकारात्मक उदारवादश अस्तित्व में आया जिसमें सार्वजनिक हित के नाम से व्यक्ति की स्वतंत्रता में राज्य के हस्तक्षेप हस्पक्षेप को स्वीकार किया। इसका प्रमुख समर्थक ग्रीन था।

उदारवाद की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. राज्य का सीमित कार्यक्षेत्र– उदारवादियों के अनुसार राज्य एवं सरकार का प्रमुख कार्य केवल परस्पर विरोधी हितों से समन्वित करना है। सरकार का कर्तव्य व्यक्ति के निजी सम्पत्ति विषयक प्राकृतिक अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करना है। लॉक के अनुसार, "यदि सरकार सुरक्षा न दे सके तो उसके अस्तित्व का कोई औचित्य नहीं रह जाता है।'' राज्य के सीमित कार्यक्षेत्र का समर्थन करते हुए बेन्थम ने विचार व्यक्त किये हैं, ''सर्वोत्तम सरकार वह है जो सबसे कम शासन करती है।''

2. राजनीतिक समानता –सामनता से उदारवादियों का तात्पर्य राजनीतिक समानता से है। उनका आर्थिक समानता में कोई विश्वास नही था। उदारवादियों की समान्यता थी कि आर्थिक असमानता न केवल अपरिहार्य है वरन् समस्त व्यक्तियों के लिए एक सकारात्मक अच्छाई भी है।

3. अहस्तक्षेप की नीति –एडम स्मिथ, रिकार्डो, माल्थन, जेरमी बेन्थम मिल आदि ने आर्थिक क्षेत्र में अहस्तक्षेप का सिद्धांत दिया। इसी आधार पर अठारहवीं शताब्दी में एक ऐसी अर्थव्यवस्था का समर्थन किया गया जिसमें राज्य का हस्तक्षेप न हो। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन विचारों में परिवर्तन आया जबकि आर्थिक क्षेत्र में अहस्तक्षेप की नीति के स्थान पर यह स्वीकार किया गया कि राज्य का उद्देश्य व्यक्ति के सामान्य कल्याण में वृद्धि करना है। पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों के शोषण के कारण उदारवादियों ने अहस्तक्षेप के सिद्धांत का परित्याग किया।

4. निर्वाचित सरकार – उदारवाद का उदय राजतन्त्रीय शक्ति के प्रत्युत्तर स्वरूप हुआ। उदारवाद राजनीतिक, निरंकुशता का विरोध तथा लोकतंत्र का समर्थन करता है। इस

आधार पर उदारवादियों ने निर्वाचित विधानमण्डलों वाली संवैधानिक सरकारों की स्थापना को महत्व दिया।

5. धर्म निरपेक्षता —उदारवाद का आदर्श धर्मनिरपेक्षता के आदर्श के बिना अधूरा है। हॉलिआक को पश्चिमी यूरोप में धर्मनिरपेक्षता का जनक माना जाता है। उसके अनुसार, ''धर्मनिरेक्षता वह सिद्धांत है जो जीवन के तत्काल कर्त्तव्य के रूप में सम्भावित उच्चतम बिन्दु तक मानव के नैतिक और बौद्धिक स्वभाव के विकास की खोज करता है।''

धर्म निरपेक्षता के सिद्धांत ने राष्ट्रीयता के विचार को आगे बढ़ाया तथा राष्ट्रीयता की भावना ने उदारवाद की विचारधारा को प्रोत्साहित किया।

6. बुर्जआ वर्ग का दर्शन उदारवाद को बुर्जआ वर्ग का दर्शन भी कहा जाता है। यह आलोचना की जाती है कि उदारवादियों द्वारा कल्याणकारी कदम उठाने के पीछे पूंजीवादी वर्ग के हितों के विकास एवं सम्बर्द्धन की अभिप्रेरणा है।

उदारवाद का विकास

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से वर्तमान तक उदारवाद के स्वरूप में कई परिवर्तन हुए। प्रारम्भ में उदारवाद का स्वरूप नाकरात्मक था। इस नकारात्मक उदारवाद के अन्तविरोधों को दूर करने के लिये इसमें सकारात्मक परविर्तन हुआ जो बीसवीं सदी में कल्याणकारी राज्य का आधार बना।

बावजूद उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रतिक्रियावादी शक्तिशाली होने के राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई। किन्तु कुलीन व जागीरदार वर्ग लोकतंत्र का विरोधी था। लोकतंत्र विरोधी होने पर भी इस वर्ग ने राष्ट्रीयता की भावना का समर्थन किया। परिणामस्वरूप 1815 ई. के बाद के काल में यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार तीव्रता से हुआ। राष्ट्रीयता की भावना ने उदारवादी प्रवृत्तियों की स्थापना के लिये प्रेरित किया। राष्ट्रवादियों की मान्यता थी कि समान भाषा, समान रीति–रिवाज तथा समान संस्कृति के लोगों को अधिकार है कि वे अपनी स्वयं की राजनीतिक संस्था बनाये। सन् 1800 ई. से 1880 ई. के मध्य यूरोप के देशों में लगभग 300 से ऊपर नये शासन–विधान बने। शनैः शनैः यूरोप से स्वेच्छाचारी शासन का अन्त होने लगा। 1815 ई. से 1870 ई. के मध्य प्रतिक्रियावादी एवं उदारवादी शक्तियों के मध्य संघर्ष होता रहा किन्तु अन्त में उदारवाद की विजय हुई।

सन् 1871 से 1914 ई. तक का समय यूरोप में शान्ति का समय था। उदार रूढ़िवादी वर्ग मताधिकार प्रतिनिधि संस्थाओं एवं केन्द्रीकरण के द्वारा स्थायित्व लाने का प्रयास कर रहे थे जबकि समाजवादी व साम्यवादी समाज के नवनिर्माण के पक्षधर थे। इस समय तक यूरोप में संसदीय संस्थाओं एव वोटाधिकार का व्यापक विस्तार हो चुका था। 1830 ई. का वर्ष यूरोप के इतिहास में क्रान्ति का वर्ष था और ये क्रान्तियाँ मुख्यता उदारवादी क्रान्तियाँथी। फरवरी 1848 ई. में पुनः क्रान्ति हुई 1850 ई. के मध्य क्रान्ति समाप्त हो गई। उदारवाद एवं राष्ट्रीय की शक्तियाँ परास्त हुई तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियोंकी विजय हुई। 1850 ई. में इटली में सार्डीनिया ही एकमात्र वैधानिक एवं उदारवादी राज्य था।

फ्रांस में उदारवाद का विकास

फ्रांस में 1789 ई. की क्रान्ति से पूर्व ही उदारवाद के विकास का आधार तैयार हो गया था। फ्रांस के बुद्धिजीवियों की मान्यता थी कि फ्रांस की सभी समस्याओं का मूल कारण निरंकुश शासन है। अतः राज्य की भूमिका सीमित होनी चाहिये। देश के आन्तरिक एवं वाह्य व्यापार पर नियन्त्रण सीमित होना चाहिए।

प्रशासन का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए तथा सामन्तीय विशेषधिकारों को समाप्त किया जाना चाहिए। इस प्रकार फ्रांस में उदारवाद बुद्धिजीवियों के विचारों से प्रेरित था।

लुई अठारहवें का काल (1814–1824) रू नेपोलियन के पश्चात् वियना सम्मेलन में लुई अठारहवें को फ्रांस का शासक बनाकर बूर्बो वंश की पुनः स्थापना की गई। लुई ने 2 जून 1814 ई. को एक संवैधानिक घोषणा पत्र के द्वारा उत्तरदायी मन्त्रिमंडल एवं द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का प्रावधान किया। इसमें उच्च सदन के सदस्य राजा द्वारा मनोनीति होने थे तथा निम्न सदन के सदस्य जनता द्वारा पांच वर्ष के लिये। निर्वाचित होने थे। मताधिकार के लिये 30 वर्ष की आयु तथा 300 फ्रैंक कर देने की योग्यता निर्धारित की गई। कानून के समक्ष सभी को समान माना गया। शासकीय सेवाओं में योग्यता को आधार बनाया गया।

समाजवाद Socialism

समाजवाद जिस प्रकार फ्रांसीसी क्रांति राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्र में उठी आवाज थी। उसी प्रकार समाजवाद आर्थिक क्षेत्र में न्याय की मांग थी। ब्रट्रेण्ड रसल के अनुसार, ''समाजवाद उन्नींसवीं शताब्दी के दर्शन का एक प्रेरक बल था और इसनें मानव जाति को एक बेहतर व्यवस्था देने के लिए कल्पनाशीलता के साथ सार्थक प्रयास किया।'' औद्योगिक क्रांति केपरिणामस्वरूप समाज में दो नये वर्गों का उदय हुआ– पूँजीपति अथवा बुर्जुआ वर्ग तथा औद्योगिक श्रमिक दल अथवा सर्वहारा वर्ग। श्रमिकों की स्थिति अत्यधिक कष्टमय थी। अतः श्रमिकों ने स्वयं को ट्रेड यूनियनों के रूप में संगठित करना आरम्भ कर दिया। समाजवादी आन्दोलन का ध्येय पूंजीवाद को समाप्त करना तथा श्रमिकों की स्थिति में सुधार लाना।

समाजवादी विचारों को वैज्ञानिक रूप देने में तथा यूरोप के अनेक देशों में समाजवादी आन्दोलन को संगठित करने में कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंजेल्स ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप के विभिन्न देशों में श्रमिकों की स्थिति में सुधार हेतु अनेक कानून पास किये गये।

औद्योगिकीकरण में यद्यपि प्रद्यपि प्रमुख भागीदारी मध्यम वर्ग की थी। प्रारम्भ में श्रमिकों ने भी उनका साथ दिया किन्तु बाद में कोई लाभ न मिलने के कारण समाजवादी आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। समाजवादी विचारकों में पूंजीवादी व्यवस्था को अन्यायपूर्ण माना। वे समाज के बहु संख्यकों के हित में आय के अधिक समान वितरण के पक्षधर थे।

समाजवादी आन्दोलन का प्रारम्भ अठारहवीं शताब्दी के प्रबोधन आन्दोलन के द्वारा हुआ। दोनों आन्दोलनों में कुछ बातें समान थीं जैसे कि प्रगति में आस्था तथा अलौकिकता का विरोध उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शोषित वर्ग आर्थिक विवशता के कारण भूमि छोड़कर कार्य की तलाश में कारखाने में जाने के लिये बाध्य हुआ। ऐसा सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में हुआ। किन्तु कारखानों में उनकी स्थिति अत्यधिक दयनीय एवं शोषणपूर्ण हो गई।

पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध आवाज बुलन्द की गई। शनैः शनैः यह विचार दृढ़ होता गया कि आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में समानता का सिद्धांत लागू होना चाहिए। औद्योगिक समाज की आलोचना समाजवादियों एवं श्रमिकों ने तो की ही साथ में उद्योगपतियों नें भी। इसमें प्रमुख नाम जर्मन उद्योगपति बाल्टर राथनावका है। वह एक समाजशास्त्री भी था। उसने आय के पुनर्वितरण, उपभोग को नियंत्रित करने एवं वंशानुगत सम्पत्ति को समाप्त करने का आह्वान किया।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यूरोप में कोई भी देश ऐसा नहीं था जहाँ उद्योगों को समाजवादी आन्दोलनों का सामना न करना पड़ा हो। 1900 ई. से 1914 ई. के मध्य यूरोप में श्रमिकों के असन्तोष में अत्यधिक वृद्धि हुई। पूंजीपति वर्ग एवं सर्वहारा वर्ग के मध्य विषमता में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। सर्वहारा वर्ग के कार्य करने के घण्टे अधिक तथावेतन अत्यधिक कम था। साथ ही कार्य करने की स्थिति भी अत्यंत कष्टप्रद एवं असुरक्षित थी।

इंग्लैण्ड में समाजवादी आन्दोलन

समाजवादी आन्दोलन का प्रारम्भ सर्वप्रथम इंग्लैण्ड से हुआ। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

1. इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम औद्योगीकरण प्रारम्भ हुआ।

2. जमींदारों द्वारा भूमि खरीद लेने से छोटे कृषकों की स्थिति दयनीय होती जा रही थी।

3. विभिन्न विचारकों ने विचार व्यक्त किया कि भूमि पर समाज का अधिकार होना चाहिए न कि थोड़े से समृद्ध लोगों का होना चाहिए।

इंग्लैण्ड में श्रमिक वर्ग की स्थिति में सुधार का प्रयास सर्वप्रथम राबर्ट ओवन ने किया। उसने मेनचेस्टर के अपने निजी कारखानों में श्रमिकों की स्थिति सुधारने हेतु अनेक सुधार कारखानों में श्रमिकों की स्थिति सुधारने हेतु अनेक सुधार किये। श्रमिकों के कार्य के घण्टे कम करके उन्हें उचित वेतन प्रदान किया। आवास एवं आमोद–प्रमोद की उचित व्यवस्था की।

राबर्ट ओवन ने अपने वर्ग से (मिल मालिकों का वर्ग) श्रमिकों के साथ अच्छा व्यवहार करने का आग्रह किया। राबर्ट के प्रयासों का ही परिणाम था कि ब्रिटिश संसद ने 1819 ई. में ष्प्रथम कारखाना अधिनियमष् पारित किया जिसके अनुसार नौ वर्ष से कम उम्र के बालकों से 12 घण्टे से अधिक कार्य न कराने का निश्चय किया गया।

राबर्ट ओवन ने ही सर्वप्रथम 1830 में श्समाजवादश शब्द का प्रयोग किया। उनका मानना था कि मजदूरों की सहकारी समितियाँ हों तथा मजदूरों का कारखानों में हिस्सा हो।

ष न्यूमैन के शब्दों में, "ओवन अपने समय के प्रसिद्ध विचारक थे। एवं उन्हें काफी समर्थन प्राप्त था। वे सहकारी आन्दोलन के पिता थे। यदि उनके प्रयोग असफल हुए तो इसलिये कि उनके उद्देश्य बहुत ऊँचे थे।''

फ्रांस में समाजवादी आन्दोलन

इंग्लैण्ड के साथ ही फ्रांस में भी समाजवादी विचारों का जन्म हो चुका था। 1789 ई. की फ्रांसीसी क्रांति से भी श्रमिकों को कोई लाभ नहीं हुआ था। 1795 ई. में बेल्यूफ नामक व्यक्ति ने साम्यवादी राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया। बेल्यूफ को फ्रेंच साम्यवाद का पिता कहा जाता है।

फ्रांस के सेंट साइमन ने श्दि न्यू क्रिश्चियनिटीश में अपने समाजवादी विचारों का प्रतिपादन किया। साइमन को समाजवादी मानने के दो कारण थे– 1. वह श्रमिकों व निर्धनों का हितैषी था। 2. वह व्यग्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा में सुधार चाहता था। वस्तुतः सेण्ट साइमन फ्रांसीसी समाजवाद का वास्तविक संस्थापक था। सेण्ट साइमन की विचारधारा को आगे बढ़ाने का कार्य चार्ल्स फुरिये ने किया उन्होंने पूंजीवादी समाजवाद की वास्तविकताओं से लोगों को अवगत कराया। निर्धनों श्रमिकों की स्थिति में सुधार हेतु उन्हें सहकारी समुदायों में संगठित करने की योजना प्रस्तुत की।

1804 ई. के बाद लुई ब्लां फ्रांस का सर्वाधिक प्रतिभाशाली विचारक था। उसने आर्थिक क्षेत्र में वैयक्तिक स्वतंत्रता के सिद्धांत का विरोध किया तथा सामाजिक कार्यशालाओं की स्थापना की मांग की। इससे वह पूंजीवादी बुराईयों को समाप्त करना चाहता था।

जर्मनी में समाजवादी आन्दोलन

जर्मनी में समाजवाद का प्रारम्भ कार्लमार्क्स से पूर्व ही हो गया था। 1830 ई. की क्रांति के बाद ब्यूखनर ने एक गुप्त समिति की स्थापना की जिसका विश्वासथा कि राजनीतिक क्रांति के साथ–साथ सामाजिक क्रान्ति का होना भी आवश्यक है। वस्तुतः जर्मनी में समाजवाद का प्रारम्भ फर्डिनेण्ड लसैल ने किया था। उसने जर्मन श्रमिकों की एक संस्था लिपजिंग में स्थापित की। लसैल के अनुसार, ष्राज्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने नागरिकों का अधिकतम कल्याण व हित करे। लसैल के अनुसार इस बात पर बल दिया कि समाजवादी आन्दोलन अपनी सफलता के लिए स्वंय श्रमिकों पर निर्भर रह सकता है।

अध्याय–3

राष्ट्रवाद Nationalism

राष्ट्रवाद को आंग्ल भाषा में नेशनेलिज्म कहा जाता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के श्नेशोश (NATIO) से हुई है। जिसका अर्थ जन्म एवं जाति से है। राष्ट्रवाद केवल एक भावना मात्र है जो कि मनुष्यों में विद्यमान रहती है। पामर व परकिन्स के अनुसार, ''अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के भवन में प्रविष्ट होने वाले अध्ययनकर्ता को राष्ट्रवाद का अर्थ समझना उसी प्रकार अपरिहार्य है जिस प्रकार कि किसी भवन में प्रविष्टि होने हेतु उसकी कुंजी की अपरिहार्यता होता है।''

सी.डी. बर्न्स, "राष्ट्रवाद एक भावनात्मक राजनीतिक मान्यता है जो प्रत्यक्ष रूप से शक्ति संघर्ष से सम्बंधित है तथा जो राज्यों की विशिष्टता को स्वीकार करती है। शासन तथा विधि के अन्तर को मान्यता देती है और जो सामान्य आदर्शों तथा विश्वास के आधार पर एक समूह को दूसरे समूह से पृथक करती है।''

राष्ट्रवाद के तत्व

राष्ट्रवाद के तत्वों को निम्नलिखित दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– 1. भौतिक तत्व एवं 2. आध्यात्मिक तत्व।

(1) भौतिक तत्व – राष्ट्रवाद से सम्बंधित प्रमुख भौतिक तत्व निम्नलिखित हैं–

1. प्रजातीय एकता – प्रायः समान प्रजाति के व्यक्ति एक समुदाय में गठित होकर भिन्न वर्ण वाले व्यक्तियों से पृथक समझने लगते हैं। त्वचा के रंग के कारण विभिन्न राष्ट्रों में निवास करने वाली जातियों के परस्पर सम्मिश्रण से भारी बाधा होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा दक्षिणी अफ्रीका में वर्ण भेद, श्वेत– अश्वेत जातियों के पृथक वर्गों में सहायक रहा है तथापि यह राष्ट्रवाद का अनिवार्य तत्व है। आधुनिक काल में शायद हीऐसा कोई देश हो जहाँ पर एक जाति के लोग निवास करते हों। संसार में किसी भी देश में विशुद्ध प्रजातियाँ बहुत ही कम पाई जाती हैं। तथापि उनमें राष्ट्रवाद की भावना के विकास में विद्यमान है। जिमर्न (Zimmern) एवं ब्राइस (Bryce) राष्ट्रीयता की भावना के विकासमें जाति को सहायक मानते हैं। जबकि मेजिनी रेनन तथा हेज इस विचारका खण्डन करते हैं।

2. भाषा में एकता – समान भाषा द्वारा राष्ट्रीय साहित्य का जन्म होता है जिससे वहाँ के निवासियों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत होती है। रैम्जे म्योर के अनुसार, ''विभिन्न जातियों में एकता उत्पन्न करने के लिए समान भाषा से बढ़कर सशक्त साधन अन्य कोई नही है'' बोघम के अनुसार, ''राष्ट्रीयता का सत्र से महत्वपूर्ण तत्व कदाचित भाषा ही है।'' हेज का मत है कि, ''संयुक्त राजय अमेरिका में अंग्रेजी का प्रयोग अमेरिका के विचारधारा को ब्रिटिश विचार धारा से सम्बद्ध करता है और विशुद्ध अमेरिकी राष्ट्रीयता के विकास में बाधक बना हुआ है।''

3. भौगोलिक एकता – एक स्थान पर निवास करने से लोगों में आत्मीयता एवं प्रेम की भावना का उदय होता है। समान भौगोलिक परिस्थितियों में रहने वाले लोगों की आवश्यकतायें समान होती हैं। रैम्जे म्योर के मतानुसार, ''जिन देशों की सीमायें निश्चित होती हैं, उनमें भौगोलिक एकता आ जाती है और यह तत्व भी आंशिक रूप में राष्ट्रवाद के कारण बन जाता है।''

4.धार्मिक एकता – एक राष्ट्र के नागरिक यदि एक ही धर्मके अनुयायी हों तो इससे राष्ट्रीय एकता में वृद्धि होती है उदाहरणार्थ पाकिस्तान तथा इजरायल छठी एवं सातवीं शताब्दी में इस्लाम ने अरबों ने अरबों ने अद्‌भुत एकता उत्पन्न की। उदाहरणार्थ यूगोस्लाविया में सर्व जाति एवं क्रीट जातियों में एकता उत्पन्न हो गई जबकि सर्वजाति के लोग ग्रीक कैथोलिक हैं और क्रीट जाति के लोग रोमन कैथोलिक हैं।

5. आर्थिक हितों की समानता – कुछ विद्वानों के अनुसार आर्थिक हितों की समानता भी राष्ट्रवाद का आवश्यक तत्व है। यूरोप में राष्ट्रीय राज्य के प्रादुभाव तथा विकास में आर्थिक हितों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। रेनान का कथन है कि आर्थिक हितों का संगठन एक कस्टम संघ तो बनासकता है किन्तु राष्ट्र नहीं बना सकता।

6. समान संस्कृति एवं परम्परायें –संस्कृति और परम्पराओं की समानता का भी राष्ट्रवाद की भावना को जाग्रत करने में विशेष महत्व है क्योंकि मानव उन व्यक्तियों के साथ रहना अधिक पसन्द करता है जिनके रीति–रिवाज एवं परम्परायें समान होती हैं।

(2) आध्यात्मिक तत्व रू राष्ट्रवाद के आध्यात्मिक तत्वों के अन्तर्गत निम्न को सम्मिलित किया जा सकता है–

1. सामाजिक स्वभाव रू मनुष्य अपने सामाजिक स्वाभाव के कारण समाज में रहना पसन्द करता है।

2. सामूहिक एकता की भावना जब कुछ व्यक्ति समाज में एक साथ रहनाआरम्भ कर देते हैं तो उनमें कुछ निजी विशेषतायें उत्पन्न हो जाती हैं जो कि अन्य व्यक्तियों से भिन्न होती है। इनकी सभ्यता व संस्कृति अन्य व्यक्तियों से भिन्न हो जाती है और उनमें राष्ट्रवाद की भावना जाग्रत हो जाती है।

3. राजनीतिक संस्थायें –राजनीतिक संस्थाओं के द्वारा भी राष्ट्रवाद कीभावना को अत्यधिक बल प्राप्त होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष में भी राष्ट्र को प्रेरणा प्राप्त होती है। विपरीत धारणा रखने वाले शत्रु का सामना करने के उद्देश्य से अनेक देश संगठित हो जाते हैं। ये राष्ट्र एक ही विचार से प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

राष्ट्रवाद के गुण

राष्ट्रवाद के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

1. राष्ट्रवाद से प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, सद्भावना एवं राष्ट्रप्रेम की भावना का जन्म होता है। हेज के अनुसार, ''जब राष्ट्रवाद शुद्ध एवं देशभक्ति का पर्याय हो जाता है तब वह मानवता व संसार के लिये वरदान हो जाता है।''

2. राष्ट्रवाद की भावना परतन्त्र एवं अविकसित राष्ट्रों में स्वातन्त्रय की भावनाओं का विकास करके दासता का अन्त करने में सहयोग देती हैं।

3. रैम्जेम्योर का कथन है कि प्रत्येक राष्ट्र की अपनी विशिष्टता होती है। प्रत्येक राष्ट्र ने मानव सभ्यता को समृद्ध एवं विकसित करने में योगदान दिया है।

4. राष्ट्रवाद की भावना राष्ट्र के नागरिकों में देशभक्ति की भावना का विकास करती है।

5. राष्ट्रवादी भावनाओं के कारण जनता में शासन के प्रति निष्ठा रहती है।

6. जिर्मन के अनुसार, ''राष्ट्रवाद सामूहिक विचार सामूहिक भावना एवं सामूहिक जीवनयापन की प्रणाली है।''

7. एक ही राष्ट्र में विभिन्न जातियों का निवास होने पर भी राष्ट्रवाद की भावना देखने को मिल सकता है इस प्रकार राष्ट्रवाद विभिन्नताओं का रक्षक है।

8. हंस कोहन आदि विचारक के अनुसार राष्ट्रवाद समस्त सृजनात्मक शक्ति एवं धार्मिक समृद्धि का स्रोत है।

अध्याय–4

प्रथम विश्वयुद्ध

प्रथम विश्वयुद्ध के कारण

प्रथम विश्वयुद्ध अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति साम्राज्यवाद प्रतिद्वंद्विता, आयुधों की होड़, विकृत राष्ट्रवाद समाचारपत्रों के सुर्खीदार समाचार छापने व अन्त में बोस्निया की राजधानी सेराजेवो में आस्ट्रिया के युवराज की हत्या, जिसमें सर्बिया के सैनिक अफसर शामिल थे, का परिणाम था। प्रथम विश्व युद्ध एक ऐसा युद्ध था जिसने पूरे विश्व को झकझोर दिया और उसकी घटनाओं से पूरा विश्व प्रभावित हुआ।

यूरोपीय कूटनीतिक व्यवस्था –प्रथम विश्व युद्ध के लिए यूरोपीय कूटनीतिक व्यवस्था काफी हद तक जिम्मेदार थी। 1871 में जर्मनी के एकीकरण के पश्चात् बिस्मार्क नें घोषित किया कि जर्मनी तृप्त और संतुष्ट राष्ट्र है और वह क्षेत्रीय फैलाव नहीं चाहता है। फिर भी उसने एल्लास और लोरेन फ्रांस से लेकर फ्रांस को आहत कर दिया, जिससे उसे सदैव भय रहता था कि फ्रांस यूरोप में दूसरे राष्ट्रों से दोस्ती करके जर्मनी से बदला लेने की कोशिश करेगा। इसलिए बिस्मार्क फ्रांस को अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एकाकी रखने के लिए कूटनीतिक जाल बुनने लगा। उसने 1879 ई. में द्वैध संधि आस्ट्रिया के साथ की। यद्यपि यह संधि रक्षात्मक थी, फिर भी संधि की शर्तें गुप्त थीं, अतः यूरोप में शंका का वातावरण व्याप्त हो गया। 1907 ई. में इंग्लैण्ड, फ्रांस और रूस ने मिलकर एक समझौता किया जिसे त्रिराष्ट्रीय समझौता त्रिवर्गीय मैत्री संघ कहा जाता है। इन दोनों गुटों की प्रतिबद्वंद्विता बढ़ती रही और अंत में ये दोनों गुट 1914 ई. में प्रथम विश्वयुद्ध में एक दूसरे के विरुद्ध लड़ने में संलग्न हो गये।

साम्राज्यवाद – साम्राज्यावाद 19वीं शताब्दी के अंत में यूरोप के लिए एक समस्या बन गया। वास्तव में जर्मनी और इटली के एकीकरण के पहले ही यूरोपीय राज्यों ने अपना साम्राज्य एशिया और अफ्रीका में स्थापित कर लिया था। इसी तरह इटली के एकीकरण के बाद उद्योगीकरण की गति तीव्र होने लगी। जब तक बिस्मार्क चांसलर रहा, उसने जर्मनी को साम्राज्यवादी युद्धों में शामिल नहीं होने दिया, लेकिन उसके पतन के बाद कैंसर विलियम द्वितीय उपनिवेश की माँग करने लगे।

इतना ही नहीं, अभी तक इंग्लैण्ड की नौ–सेना काफी शक्तिशाली थी और उसकी समुद्री शक्ति को कोई देश चुनौती देने के काबिल नही था। लेकिन जब जर्मनी ने साम्राज्यवादी नीति अख्तियार की तो वह अपनी नौ–सेना को भी मजबूत करने लगा जिसे इंग्लैण्ड ने एक चुनौती के रूप में लिया।

परिणामतः ये देश वैसे देशों से उपनिवेश छीनना चाहते थे जिन्होंने पहले ही अपना साम्राज्य विस्तार कर लिया था, जबकि दूसरे वर्ग के देश श्यथास्थितिश में अपना आर्थिक हित समझते थे। ऐसी हालत में संघर्ष अवश्यंभावी हो गया।

विकृत राष्ट्रवादी – विकृत राष्ट्रवाद भी प्रथम विश्व युद्ध के लिए काफी हद तक जिम्मेदार था। यह जर्मनी और इटली के एकीकरण में रक्षात्मक रूप में उभरा। राष्ट्रवाद

का उदय फ्रांस की क्रांति का एक परिणाम था। राष्ट्रवाद का सबसे बड़ा विकृत रूप यह था कि कुछ जातियाँ अपने को सर्वश्रेष्ठ समझने लगीं और अन्य जातियों पर अपना शासन स्थापित करना अपना हक (अधिकार) समझने लगी। अतिशय राष्ट्रवाद प्रथम विश्वयुद्ध के लिए बहुत हद तक जिम्मेदार था, क्योंकि जर्मनी की उग्रवादी, राष्ट्रवादी विचारधारा के कारण यूरोप के दूसरे देश चिंतित हो गये और उसे किसी भी तरह पराजित करने का अवसर ढूंढ़ने लगे।

सैन्यवाद – प्रथम विश्व युद्ध के लिए सैन्यवादी अवधारणायें भी काफी जिम्मेदार थी। वास्तव में फ्रांस की क्रांति के साथ सैन्यवाद का जन्म हुआ और इटली एवं जर्मनी के एकीकरण के समय तक सैन्यवाद का काफी विकास हुआ। सैनिक पदाधिकारी युद्ध की संभावना में सदैव रहते थे। क्योंकि युद्ध के समय उनका महत्व बढ़ जाता है, उन्हें रणकौशल दिखाने का मौका मिलता है तथा पदोन्नति की सम्भावना भी बढ़ जाती है। साम्राज्यवादी विस्तार के लिए सेना तथा नौ–सेना बढ़ाने की होड़ लग गई। यह स्थिति युद्ध के लिए काफी हद तक उत्तरदायी थी।

समाचार पत्रों की भूमिकारू समाचार पत्रों ने भी युद्ध भड़काने में काफी हाथ बंटाया 18वीं तथा 19वीं शताब्दी के शुरू के वर्षों में जनमत का कोई महत्व नही था। लेकिन फ्रांस की 1830 और 1848 ई. की क्रांति और उनके परिणामस्वरूप हुए यूरोप में राजनीतिक चेतना तथा इटली और जर्मनी के एकीकरण में समाचारपत्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1871 ई. के बाद फ्रांस का जनमत निश्चित रूप से जर्मनी के विरुद्ध था। बोन्सिनया, हर्जेगोवना और सर्बिया की जनता आस्ट्रिया के विरुद्ध थी और रूस की जनता स्लाव जाति होने के कारण बाल्कन देशों के साथ थी। इसी तरह 1890 ई. के बाद इंग्लैण्ड की जनता जर्मनी को अपना शत्रु समझने लगी क्योंकि वह इंग्लैण्ड के साम्राज्यवाद में रोड़ा अटकाने लगा था। जर्मनी और इटली भी फ्रांस और इंग्लैण्ड के विरुद्ध थे। इस तरह हम देखते हैं कि समाचार पत्र विभिन्न देशों में अन्य राष्ट्रों के विरुद्ध जनमत तैयार करने लगा।

मार्क्सवादी विचार– मार्क्सवादी इतिहासकारों का विचार है कि प्रथम विश्वयुद्ध बड़ी–बड़ी हथियार बनाने वाली कंपनियों द्वारा अपनी सरकारों पर युद्ध करने के लिए दबाव के कारण हुआ। जर्मनी में सैन्यवाद के उभरने से हथियार की मांग बढ़ी। इन पूंजीपतियों को हथियार के लिए कारखानों से ज्यादा फायदा हो रहा था और इन्होंने पैसा खर्च कर अपने–अपने देशों की सरकारों को युद्ध के लिए प्रेरित करना शुरू किया। प्रचार माध्यमों पर भी इनका काफी प्रभाव था, परिणामतः प्रचार माध्यमों का इस्तेमाल ये युद्धाग्नि भड़काने के लिए करते थे, क्योंकि युद्ध की स्थिति में इनके हथियारों के अधिक बिकने की गुंजाइश थी जिससे इनको अधिक मुनाफा मिलता।

फ्रांस के बदले की भावना रू जर्मनी 1870 ई. में फ्रांस को पराजित कर संतुष्ट नहीं हुआ। व्यर्साय के राजाप्रसाद में प्रशा के राजा को जर्मनी का सम्राट घोषित किया गया और फ्रांस से एल्लास और लोरेन ले लिया गया। स्वाभिमानी फ्रांसीसी इस राष्ट्रीय अपमान को कभी नहीं भूल पाये। जले पर नमक छिड़कने के लिए जर्मनी ने मोरक्को में भी फ्रांस का विरोध किया इससे फ्रांस में जर्मनी के विरुद्ध विद्वेष की भावना बढ़ी। वहाँ के कई राजनीतिक नेताओं तथा चिंतकों ने उत्तेजनापूर्ण लेखों से लोगों को जर्मनी के विरुद्ध उत्तेजित करना शुरू किया, जिसके परिणामस्वरूप फ्रांस ने आक्रामक कूटनीतिक जला बुनना शुरू किया

और इंग्लैण्ड और रूस से मित्रता की फ्रांस किसी भी तरह जर्मनी से अपने अपमान का बदला लेना चाहता था और प्रथम विश्व युद्ध में ही वह ऐसा मौका देख रहा था।

अंतर्राष्ट्रीय अराजकता –1879 ई. में बिस्मार्क ने जिस कूटनीतिक जाल को बुनना शुरू किया, उसका एक स्वरूप संधि की शर्तों को गुप्त रखता था। ऐसी स्थिति में शंका और भय का वातावरण यूरोप में व्याप्त हो गया। इसके अलावा यूरोपीय देश अपने छोटे से छोटे स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी भी संधि की शर्त को तोड़ने के लिए नहीं हिचक रहे थे। उसी तरह जर्मनी एक तरफ आस्ट्रिया के साथ रहते हुए अपने हितों को साधने के लिए दूसरे गुट से भी संपर्क बनाये हुए था। इस प्रकार यूरोप में प्रथम विश्वयुद्ध के समय अन्तर्राष्ट्रीय आराजकता फैली हुयी थी, जिसमें संधि की शर्तों की अवहेलना और मित्रवत् रहने पर भी शत्रुवत षड़यंत्र करना आम बात हो गयी थी।

बाल्कन क्षेत्र की जटिलता – बाल्कन क्षेत्र की जटिल समस्या ने त्रिवर्गीय संधि और त्रिवर्गीय मैत्री संघ के सदस्यों को आमने–सामने ला खड़ा किया। वास्तव में एक तरफ यदि धर्म और जाति के नाम पर अपने को स्लाव जाति का संरक्षक समझता था तो दूसरी तरफ ऑस्ट्रिया किसी भी तरह से सर्व आन्दोलन को दबाकर उस क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता था। इसी तरह ऑस्ट्रिया भी बाल्कन क्षेत्र में अकेले युद्ध करने की हिम्मत नहीं करता यदि उसे युद्ध के समय जर्मनी और इटली का समर्थन मिलने की आशा नही रहती। इसीलिए कहा जाता है कि ''प्रथम विश्वयुद्ध दो घोड़ों (सर्बिया और ऑस्ट्रिया) का युद्ध था घुड़सवार बाद में इस युद्ध में शामिल हुए।''

तात्कालिक कारण रू प्रथम विश्व युद्ध का तत्कालिक कारण बोस्निया की राजधानी सेराजेवो में एक सर्व द्वारा आस्ट्रिया के युवराज और उसकी पत्नी की हत्या थी। ऑस्ट्रिया की सरकार इसके लिए सर्बिया को दोषी मानती थी और उसने एक अल्टीमेटम भेजा जिसकी सभी शर्तों को मानना सर्बिया के लिए असंभव था। फिर भी ऑस्ट्रिया की कुछ मांगे सर्बिया ने स्वीकार कर लीं और बाकी मांगो पर उसने पुनर्विचार करने के लिए आवेदन किया जिसे ऑस्ट्रिया ने अस्वीकार कर दिया। अपनी मांगो की पूर्ति न होने पर ऑस्ट्रिया ने 28 जुलाई 1914 को सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 30 जुलाई 1914 को रूस ने अपनी सेना को प्रस्थान करने की आज्ञा दी। 31 जुलाई को ऑस्ट्रिया और 1 अगस्त को जर्मनी ने अपनी सेना का प्रस्थान कराया। इस तरह प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हुआ जो त्रिगुट संधि एवं ट्रिपल अतां के देशों के मध्य हुआ।

प्रथम विश्व युद्ध के परिणाम रू प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् उसके भयंकर एवं दूरगामी परिणाम भी सामने आये। ये हैं–

साम्राज्य विघटन – प्रथम विश्वयुद्ध का तत्कालिक परिणाम यह हुआ कि इसने जर्मनी ऑस्ट्रिया एवं तुर्की के साम्राज्यों को छिन्न–भिन्न कर दिया। इन तीनों साम्राज्यों के भंग होने से यूरोप में अनेक नये देशों का उदय हुआ, यथा– युगोस्लाविया, हंगरी, रुमानिया इत्यादि।

मित्रराष्ट्रों को लाभ रू इन तीनों साम्राज्यों के विघटन से मित्रराष्ट्रों अर्थात् इंग्लैण्ड, फ्रांस इत्यादि को काफी लाभ हुआ। मित्र राष्ट्र विजयी थे, अतः उन्होंने पराजित राज्यों को हड़पा। इराक एवं फिलीस्तीन पर इंग्लैण्ड और सीरिया एवं लेबनान पर फ्रांस ने

मैनडेट–प्रणाली के आवरण में अपना दखल अपनाया। इन देशों को स्वतंत्र होने में काफी समय लगा।

रूसी क्रांति – प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ही रूस में बौल्शेविक क्रांति हुयी और वहाँ साम्यवादी सरकार बनी जिसने साम्राज्यवाद की निन्दा की और रूसी साम्राज्य को विघटित किया। सभी परतंत्र जातियाँ अपनी स्वतंत्रता के लिए सोवियत संघ की ओर मुखातिब हुयी।

पूँजीवाद का रूप बदलारू पूँजीवादी देशों में पूँजीवाद का स्वरूप बदला। श्रम विश्वयुद्ध के दौरान में देश सैनिक सामग्री काफी मात्रा में नही उत्पादित र सकते थे। इसका मुख्य कारण यह था कि काम करने लायक पुरुषों की ख्या कम हो गयी थी। ये पूँजीवादी देश बाध्य होकर अपने उपनिवेशों को भी द्योग बैठाने के लिए अनुमति देने लगे। भारत का प्रथम दौर का उद्योगीकरण सी नीति का परिणाम था।

अमेरिका का महत्व बढ़ा – प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप यूरोपीय देशों ा प्रभुत्व समाप्त हो गया। प्रथम विश्वयुद्ध में यूरोपीय राज्यों को भारी मात्रा में र्ज संयुक्त राज्य अमेरिका से लेना पड़ा। इस युद्ध के बाद सर्वप्रथम यूरोप के हर के व्यक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति बुडो विलसन और विजित राष्ट्र उसकी दुहाई देते रहे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अब तक के प्रभावशाली राष्ट्रों फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी इत्यादि का महत्व घटा और इसकी जगह पर युक्त राज्य अमेरिका और रूस का प्रभाव बढ़ा।

जापान और अन्य राज्यों का उद्योगीकरण– युद्ध के दौरान यूरोपीय राष्ट्र अपने बाजार में जरूरत के अनुसार समान नही भेज पाये। परिणामतः जापान जैसे देशों को उद्योगीकरण का मौका मिला और उसने एशिया के देशों को अपना बाजार बनाया। फलतः वे इसका उत्पादन स्वयं करने लगे। इससे अविकसित और यूरोप के बाहर के विकसित देशों को अपने उद्योगों को विकसित करने का अवसर मिला।

मनुष्यों का विनाश– प्रथम विश्वयुद्ध के चार वर्षों में कुल मिलाकर 40 लाख मनुष्य मारे गये साठ लाख व्यक्ति बुरी तरह घायल होकर सदा के लिए अपंग और पराश्रित हो गये। एक करोड़ तीन लाख व्यक्ति सामान्य रूप से घायल हुए। नरसंहार की ऐसी रोमांचकारी घटना विश्व इतिहास में पहले नही घटी थी।

धन का विनाश – इस भीषण महायुद्ध में 32 राष्ट्रों ने मित्रराष्ट्रों की ओर से और चार राष्ट्रों ने जर्मनी की ओर से भाग लिया था। संसार के केवल चौदह राष्ट्र इस युद्ध में तटस्थ रहे। विश्व के महान अर्थशास्त्रीयों के हिसाब से इस महायुद्ध में अट्ठावन हजार पांच सौ करोड़ रुपये व्यय हुए। इस महायुद्ध का औसत दैनिक व्यय 40 करोड़ रुपये था और अंतिम वर्षों में यह व्यय चौरासी करोड़ रुपये तक बढ़ गया। इस खर्च के अतिरिक्त महायुद्ध में संपत्ति का विनाश भी 1,32,000 करोड़ रुपये तक पहुँच गया था।

उद्योग धन्धों की क्षति – महायुद्ध काल में अनेक उद्योग नष्ट हो गये। गोलीबारी के कारण हजारों की संख्या में फैक्टरियों की मशीनें और इमारतें टूट गयीं। इस दृष्टि से सबसे अधिक क्षति सर्बिया, रुमानिया, बेल्जियम, फ्रांस और इंग्लैण्ड को उठानी पड़ी।

आर्थिक असन्तुलन – महायुद्ध के बाद आर्थिक असन्तुलन पैदा हुआ। कई यूरोपीय देशों में तो पुरुषों की कमी हो गयी। फलतः विश्व के आर्थिक संगठन को भारी धक्का लगा। शक्ति स्थापना के बाद लोगों के पुनर्वास आदि की समस्या आ खड़ी हुयी। फिर विस्थापितों को रोजी देने का प्रश्न सामने आया।

निरंकुश शासकों का अंत– महायुद्ध के बीच ही रूस में साम्यवादी क्रांति हुयी जिसके परिणामस्वरूप वहाँ से जारशाही का अनत हो गया। महायुद्ध के सात वर्ष बाद तुर्की के सुल्तान के निरंकुश शासन का भी अन्त हो गया।

अध्याय–5

रूसी क्रान्ति

1919 की वर्साय संधि और व्यवस्थाएँ

प्रथम विश्व युद्ध की भयानक त्रासदी के बाद शान्ति की स्थापना की सर्वाधिक आवश्यकता महसूस की गयी। अतः फ्रांस की राजधानी पेरिस में महत्वपूर्ण सन्धियाँ हुई, जिसमें वसार्य में हुई जर्मनी के साथ सन्धि सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। चार महीने के अनवरत् परिश्रम के बाद इस सन्धि का प्रारूप तैयार हो सका था। दो सौ तीस पृष्ठों में छपी हुई यह सन्धि पन्द्रह भागों में विभक्त थी और इसमें चार सौ चालीस धाराएँ थीं। 06 मई, 1919 को इसका प्रारूप सम्मेलन के सम्मुख प्रस्तुत किया गया तथा स्वीकृत हुआ।

वर्साय की सन्धि में चार लोगों के महत्वपूर्ण योगदान रहे हैं–1. अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन, 2. फ्रांस के क्लॉमांसी, 3. इटली के आरलैंड़ो, 4. ब्रिटेन के लायड जॉर्ज।

06 मई 1919 को हुई वर्साय की सन्धि की प्रमुख धाराएँ निम्नलिखित हैं–

1. प्रादेशिक व्यवस्थाएँ (Territorial Provisions)

1. जर्मनी को अल्सेस–लारेंस प्रदेश फ्रांस को देने थे।

2. बेल्जियम व लक्जमवर्ग की तटस्थता को समाप्त होना था।

3. सार प्रदेश की खानों पर फ्रांस का आधिपत्य होना था।

4. जर्मनी के उपनिवेश ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, आस्ट्रेलिया तथा जापान आदि को मेडेट के रूप में बाँट दिये गये।

5. जर्मनी को मेयल बन्दरगाह मित्र राष्ट्रों को सौंपना पड़ा। इस प्रकार जर्मनी को यूरोप में लगभग 25 हजार वर्ग मील से अधिक भूमि और 70 लाख नागरिकों को खोना पड़ा।

6. जर्मनी को राइनलैण्ड पर अपना अधिकार त्यागना पड़ा। राइनलैण्ड को तीन भागों में बाँटा गया।

7. डॉजिन्जग नगर जिसे जर्मनी ने बसाया था, उससे छीन लिया गया तथा यह व्यवस्था की गई कि यह शहर एक स्वतंत्र नगर के रूप में विकसित हो।

2. राजनैतिक व्यवस्थाएँ (Political Provisions)

पेरिस शान्ति सम्मेलन के द्वारा राष्ट्र संघ के निर्माण के बीज पड़े। वसार्य सन्धि की दो दर्जन से अधिक धाराएँ राष्ट्रसंघ के विधान के समान हैं। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और विश्वशान्ति तथा सुरक्षा की बातें कही गयी हैं। इसके अन्तर्गत जर्मनी को यह आदेश दिये गये कि यह नवीन निश्चित की गई सीमाओं में अपने सैनिकों की वापसी कर ले। राइन नदी के पश्चिमी तट तथा अन्य प्रमुख स्थानों पर अब मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ रहेंगी। एक

अन्य व्यवस्था द्वारा पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, बेल्जियम तथा यूगोस्लाविया को स्वतंत्र राज्य घोषित किया गया।

3. सैनिक व्यवस्थाएँ (Army Provisions)

इसके अन्तर्गत जर्मनी से उनकी अनिवार्य सेवा समाप्त करने को कहा गया। यह व्यवस्था की गई कि जर्मनी की स्थल सेना 12 वर्ष तक एक लाख सैनिकों से अधिक न हो। जर्मनी की जल सेना को बहुत सीमित कर दिया गया। जर्मनी के प्रधान सैन्य कार्यालय को समाप्त कर दिया गया तथा टैंक आदि सैन्य सामग्री के उत्पादन आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। राइन नदी का पूर्ण निशस्त्रीकरण कर दिया गया। इस प्रकार सैन्य दृष्टिकोण से जर्मनी की स्थिति को अत्यन्त क्षीण कर दिया गया।

4. आर्थिक व्यवस्थाएँ (Economic Provisions)

वसार्य सन्धि के अनुसार युद्ध क्षतिपूर्ति का पूरा भार जर्मनी के कंधों पर डाल दिया गया। इसके लिए उन्होंने एक आयोग की स्थापना की। जिसको यह कार्यभार सौंपा गया कियह 30 वर्षों में जर्मनी द्वारा चुकता की जाने वाली धनराशि का निर्धारण कर दे। यह भी निश्चित किया गया कि जर्मनी 1 मई, 1921 से पूर्व तक के लिये विभिन्न रूपों में राष्ट्रों को 5 अरब डालर की धनराशिचुकायेगा। आयोग यदि चाहेगा तो जर्मनी 20 लाख टन भार के जहाज प्रतिवर्ष बनाकर मित्र राष्ट्रों को देने के लिए कह सकेगा। जर्मनी अपने जहाज, जिसका भार 1600 टन या अधिक है, मित्र राष्ट्रों को सौंप देगा।

जर्मनी पर यह शर्त भी लगा दी गई कि वह फ्रांस को 70 लाख टन कोयला, बेल्जियम को 80 लाख टन और इटली को 70 लाख टन कोयला प्रतिवर्ष देगा। जर्मनी को अपने विशेष व्यापारिक अधिकारों को जो कि उसने चीन, मिस्र तथा मोरक्को में प्राप्त कर रखे थे, समाप्त करने पड़े तथा इसके अतिरिक्त जर्मनी को मित्र राष्ट्रों को आयात एवं निर्यात में अनेकानेक सुविधाएँ भी प्रदान करनी पड़ीं। इसके साथ ही साथ जर्मनी को कील नहर को अन्तर्राष्ट्रीय घोषित करना पड़ा।

5. कानूनी व्यवस्थाएँ (Judicial Provisions)

इस व्यवस्था के अन्तर्गत यह कहा गया कि जर्मनी ही युद्ध करने वाला राष्ट्र है। अतः वह युद्ध अपराधी है। उसको अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन करने वाला अपराधी माना गया।

वसार्य सन्धि के गुण (Merits of Versailles Treaty)

उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी पेरिस सम्मेलन में सम्पन्न हुई सन्धियों में कुछ महत्वपूर्ण धाराएँ भी निहित थीं। यद्यपि वर्साय सन्धि को बनाते समय बिल्सन के चौदह सिद्धांतों का पूरी तरह पालन नहीं किया गया, तथापि कुछ इतिहासकारों के मतानुसार वर्साय सन्धि एक आदर्श सन्धि थी, जो उस समय की परिस्थितियों में सम्पन्न हो सकती थी। सन्धि के गुण के विषय में निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जा सकता है–

1. राष्ट्रपति विल्सन द्वारा बनाये गये सिद्धांतों के आधार पर विश्व में स्थायी शान्ति व व्यवस्था बनाने के उद्देश्य से राष्ट्र संघ की स्थापना की गई थी।

2. श्रमिकों की स्थिति में सुधार लाने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन भी स्थापित किया गया था।

3. क्षतिपूर्ति की धनराशि को निश्चित करने के लिए एक क्षतिपूर्ति आयोग का गठन किया गया।

4. मैन्डेट व्यवस्था को लागू किया गया जिसके आधार पर जर्मनी के सभी उपनिवेशों का विभाजन मित्रराष्ट्रों के मध्य किया गया।

5. युद्ध के सम्पूर्ण खर्च का भार जर्मनी पर नहीं डाला गया था। उसे केवल उसी क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी बनाया गया, जो क्षति मित्रराष्ट्रों की जनता को जर्मन आक्रमणों के कारण सहन करनी पड़ी थी।

6. राष्ट्रीयता और आत्मनिर्भरता के सिद्धांत के आधार पर पोलैण्ड, फिनलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया आदि नये राज्यों की रचना की गई। यह पहला अवसर था, जबकि राष्ट्रीयता के सिद्धांत को इतने बड़े पैमाने पर लागू किया गया था।

वर्साय सन्धि द्वितीय विश्व की जनक (Versailles Treaty : Posibility of Second Wrold War)

वर्साय सन्धि को द्वितीय विश्व युद्ध के लिए जिम्मेदार बताया जाता है, क्योंकि इस सन्धि में जो व्यवस्थाएँ की गई थीं, वे अत्यन्त अन्यायपूर्ण और अपमानजनक थीं। इसका कारण यह था कि इस सन्धि का आधार ही बदला लेने की भावना पर आधारित था। परिणामस्वरूप मार्शल फोच की यह भविष्यवाणी जिसमें कि उसने कहा था कि, ''वर्साय सन्धि शान्तिपूर्ण सन्धि नहीं थी, बल्कि 20 वर्ष के लिए की गई युद्ध विराम सन्धि थी।'' सत्य सिद्ध हुई क्योंकि इस सन्धि में जर्मनी को इस प्रकार नष्ट करने की योजना बनाई गई थी कि जर्मनी इसके अनुसार चलता रहता तो फिर पुनः कभी भी अपने राष्ट्रीय सम्मान को प्राप्त न कर पाता। अतः इस प्रकार की सन्धि की शर्तों का उल्लंघन करता गया।

हिटलर के नेतृत्व में नाजी पार्टी का गठन हुआ और उसने वहाँ के राष्ट्रपति और चान्सलर दोनों के पदों पर कब्जा कर लिया। हिटलर ने अपने राष्ट्र को पुनः सम्मान देने के लिए तीन नीतियाँ अपनाई–

1. जर्मनी जाति का सगठन,

2. जर्मनी साम्राज्य का विस्तार,

3. वर्साय सन्धि को भंग करते हुए उसने कहा था कि मित्र राष्ट्रों ने न तो शस्त्रों को कम किया और न ही सैन्य संख्या घटाई। इसलिए जर्मनी भी अपनी सैन्य संख्या बढ़ाने और शस्त्रीकरण के लिए स्वतंत्र है। हिटलर की इन नीतियों को जर्मनी की 98 प्रतिशत जनता ने स्वीकारा। मार्च में 1938 ई. में आस्ट्रिया को जर्मनी के साथ मिलाकर एवं सितम्बर में चेकोस्लोवाकिया को हड़पकर उसने वर्साय सन्धि की अवहेलना की। इसके बाद उसने पोलैण्ड को निगलने के लिए आक्रमण नीति अपनाई तो पुनः 1938 ई. में एक और विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया जो कि द्वितीय विश्व युद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

निष्कर्ष (Conclusion) : इस प्रकार स्पष्ट हो जाता कि यदि 1919 में पेरिस में जर्मनी के साथ अपमानजनक व्यवहार करके उस पर यह सन्धि न थोपी होती बल्कि उसे भी सन्धि की शर्तों के निर्धारण में अपना योगदान देने का पूर्ण तथा स्वतंत्र मौका दिया जाता तो विश्व में स्थाई शान्ति बनी रहती। किन्तु मित्र राष्ट्र अपनी विजय के नशे में इतने चूर थे कि उन्होंने सारी समझदारी को उठाकर ताक पर रख दिया था।

रूसी क्रांति 1917

1917 ई. की रूस की क्रांति रूस की पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था, किसानों और मजदूरों की विपन्नता, निरंकुश शासन के अत्याचार, रूस में जनविद्रोह की परम्परा तथा सरकार में मजदूरों की स्थिति में सुधार लाने की इच्छा के अभाव का सम्मिलित परिणाम थी। रूस की कृषि व्यवस्था अब भी पुराने ढंग पर चल रही थी। उद्योग धंधे 1861 के बाद स्थापित जरूर हुए किन्तु सरकारी संरक्षण में चलने के कारण उनकी स्थिति ठीक नहीं थी। उनमें काम करने वाले मजदूरों की स्थिति में कोई सुधार नहीं था। दूसरी ओर, निरंकुश राजतंत्र में किसी भी प्रकार के जनप्रतिनिधित्व का अभाव या जिसके कारण सोचकर किसी भी माँगको विद्रोह का चिन्ह समझती थी। अतः उसे निर्दयता से दबाने की कोशिश करती थी। अतः उसे निर्दयता से दबाने की कोशिश करती थी। धीरे–धीरे रूस में समितियाँ बनी जो बाद में राजनीतिक पार्टियों के रूप में उभरी। उन्होंने जनता को राजनीतिक शिक्षा दी, जिसके कारण 1971 ई. की क्रांति संभव हो सकी।

रूस की क्रांति 20वीं शताब्दी के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी जो कि अमेरिका और फ्रांस की क्रांतियों से अलग महत्व रखती है। रूस की क्रांति ने सम्राट के एकतंत्रीय स्वेच्छाचारी शासन का अन्तकर लोकतंत्र की स्थापना का ही प्रयत्न नहीं किया अपितु सामाजिक, आर्थिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में भी कुलीनों, पूंजीपतियों और जमीदारों का अन्त कर स्थापित की। इससे समाजवाद की विचारधारा को संसार में पहलीबार मूर्त रूप मिला।

रूस की क्रांति का आर्थिक आधार रू 1917 ई. में रूस कृषि के क्षेत्र में अत्यंत पिछड़ा देश था। देश की अधिकांश भूमि जमीदारों की थी और सबसे बड़ा भूमिपति स्वयं जार था। क्रीमिया के युद्ध में पराजित होने के बाद रूस ने 1869 ई. में अर्द्धदास प्रथा समाप्त कर दी। किसानों को भूमि दी गई लेकिन सरकार ने उनसे बहुत अधिक पैसा इसके बदले में लिया, क्योंकि सरकार को भूमिपतियों को मुआवजा देना पड़ा। इसके अतिरिक्त किसानों पर कर का बोझ था जिस कारण मजदूरके रूप में परिवर्तन हो गये। रूस की कृषि में किसी प्रकार का सुधार न होने के कारण उपज में वृद्धि नहीं हो थी। अतः छोटे कृषक जीविका के लिये गाँव छोड़कर अन्य जगह जा रहे थे।

1914 से 1916 ई. के बीच रूसी सेना को विश्वयुद्ध में कई सीमाओं पर लड़ना पड़ा जिससे कृषि कार्य प्रभावित हुआ। कृषि में लगे लगभग 50 प्रतिशत लोगों को सैनिक कार्य में लगा लिया गया। कृषि उपरकरणों में 25 प्रतिशत की कमी हो गयी। अतः उपज में भारी कमी आ गयी। उपज में कमी के कारण किसानों को कर देना और बोझ स्वरूप हो गया। 14वीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक यूरोप के प्रमुख देशों में औद्योगिक विकास हो चुका था किन्तु अतः इस क्षेत्र में भी पिछड़ा था। उसे लोहा, कोयला व अन्य सामग्रियाँअन्य देशों

सेलेना पड़ता था। उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों की स्थिति भी अत्यन्त थी। कारखानों के मालिक कम मजदूरी देकर अधिक से अधिक काम लेते थे। उनका जीवन निर्वाह मुश्किल था। उन्हें अपना संघ बनाने का अधिकार नहीं था। शासन सदैव उद्योगपतियों का पक्ष लेता था।

जारशाही की निरंकुशता

रूस में सदियों से निरंकुश जारों का शासन चला आ रहा था। वे स्वेच्छाचारी शासन और देवी अधिकार के सिद्धांत के समर्थक थे। रूस का अन्तिम जार निकोलस द्वितीय जो रूढ़िवाद का अवतार था, परिवर्तन उदारवाद और सुधारों का कट्टर विरोधी था। उस पर अपनी रानी शस्पुटिन का प्रभाव था। जनता उससे घृणा करती थी अतः 1916 में शस्पुटिन की हत्या कर दी गई।

निकोलस के अत्याचारों व दमन ने जनता के असंतोष को बुरी तरह भड़का दिया और जब विदेश नीति के क्षेत्र में भी निकोलस असफल रहा तथा रूस को जापान के हाथों पराजित होना पड़ा तो 1905 में क्रांति हो गई। जार ने किसी प्रकार क्रांति को शान्त किया और क्षणिक परिवर्तन किए लेकिन कुछ समय बाद वह पुनः निरंकुश शासन चालने लगा अतः असंतोष की आग सुलगती रही और समय पाकर 1917 ई. की क्रांति में पराजित हो गई। जारों का अत्याचारी शासन ही जारशाही को ले डूबा।

ड्यूमा के प्रभाव को कुचलने की चेष्टा

1905 की क्रांन्ति में विद्रोह को संभालने के लिए जार निकोलस ने शासन सुधारों की घोषणा की और कहा कि ड्यूमा (संसद) की स्थापना की जायेगी। उसने ड्यूमा का चुनाव तो करवाया किन्तु 4 माह उसे भंग कर दिया बाद में उसने जनता के मताधिकार को सीमित कर अपने लोगों को ड्यूमा में निर्वाचन कराया। जार की इस चाल से जनता में बड़ा आक्रोश फैला और जारशाही को समूल नष्ट करने के अवसर की राह दिखने लगी।

गैर रूसी जातियों का असन्तोष

जारशाही ने गैर रूसी जातियों के साथ बड़ी कठोरता का व्यवहार किया। जार अलेक्जैण्डर द्वितीय ने गैर रूसी लोगों का रूसीकरण शुरू कर दिया। उन पर रूसी भाषा और रूसी कानून लाद दिये गये। रूसीकरण के नाम पर यहूदियों और आर्मीनियों पर भीषण अत्याचार किये गये। बाल्टिक प्रान्तों में भी रूसीकरण की नीति अपनायी गई। इससे उनमें राष्ट्रीय भावनाएँ जोर लेने लगी और विद्रोह हुए। निकोलस द्वितीय ने फिनलैण्ड को निरंकुशता का शिकार बनाया। अतः 1905 में जार्जिया, पोलैण्ड, और बाल्टिक प्रान्तों में भयंकर विद्रोह हुए। जार की इस रूसीकरण की नीति ने सभी गैर रूसी जातियों को शासन विरोधी बना दिया और इन्होंने जार के विरुद्ध आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया।

समाजवाद का विकास

रूसी किसानों और मजदूरों की दयनीय स्थिति से प्रभावित होकर समाजवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ने लगा। 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में रूस में समाजवादी दो गुटों में विभाजित हो गये। क्रांन्तिकारी समाजवादी दल तथा सामाजिक लोकतांत्रिक दल 1903 ई.

में समाजवादी लोकतांत्रिक दल भी दो गुटों में विभाजित हो गया। बोल्सेविक और मेन्सेविक बोल्सेविक दल का नेता लेनिन था। इसके विचार उग्र थे और वह रूस में श्रमिक वर्ग का राज्य स्थापित करना चाहता था। इन दलों ने जारशाही को समाप्त करने के लिये जनता को उकसायया जार ने इन समाजवादी विचारों को रोकने के लिए कठोर कदम उठाये किन्तु इन्हें रोकना कठिन कार्य था। इस विचारधारा ने क्रांति को अवश्यम्भावी बना दिया। क्रांतिकारी साहित्य की रचना यद्यपि जारों ने रूसी जनता को पाश्चात्य विचारों के प्रभाव से वंचित रखने का प्रयत्न किया लेकिन रूस यूरोप के नवीन विचारों से अछूता नही रह सका। यूरोपीय विचारों का रूसी भाषा में अनुवाद हुआ। टालस्टाय, तुर्गनेव, डोस्टोईवस्को आदि उपन्यासकारों ने क्रान्तिकारी विचारों का प्रतिपादन किया, जिसे पढ़ कर रूसी जनता में क्रान्ति की भावना जाग्रत हुई। इसी प्रकार कार्लमार्क्स, मैक्सिमगोर्की और बुकानिन के समाजवादी विचारों ने रूसी जनता में भारी बौद्धिक क्रांति को प्रोत्साहित किया।

रूसी नौकरशाही की अयोग्यता

पीटर महान ने शासन संचालन के लिये विशाल नौकरशाही का संचालन किया था। नौकरशाही के उच्च पदाधिकारी निरंकुश शासन में विश्वास करते थे। जनता के प्रति उनकी कोई सहानुभूति नही थी। नौकरशाही मनमाने अत्याचार करती थी व जनता का शोषण करती थी। प्रथम विश्वयुद्ध में इस भ्रष्ट नौकरशाही ने सेना की आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं किया और सेना को भारीक्षति उठानी पड़ी। इससे जनता में असंतोष की वृद्धि हुई।

क्रांतिकारी व योग्य नेताओं का आविर्भाव

रूस की क्रान्ति का श्रेय लेनिन ट्रायस्की व स्टालिन आदि को जाता है। ऐस दृढ़ निश्चयी नेताओं ने ही क्रान्ति को संभव बनाया। इनमें भी सर्वाधिक श्रेय लेनिन को है। रूस की क्रांति को जो नवम्बर 1917 में सफलता मिली तथा जो बोल्सेविक दल द्वारा सत्ता हस्तगत की गई उसकी योजना लेनिन ने ही बनायी थी।

तात्कालिक कारण

(1) महायुद्ध में पराजय तथा सैनिक विनाशरू प्रथम विश्वयुद्ध में रूसी के जार ने अपनी भूखी नंगी सेना को युद्ध में धकेल दिया। यह सेना युद्ध प्रारंभिक दिनों में ही पराजित हो गई। रूसी सेना की इस पराजय ने एक तरफ जनता में असंतोष फैलाया तो दूसरी तरफ स्वयं सैनिक असंतुष्ट हो गये। इसका मुख्य कारण सेना को बिना साज– समान के युद्ध में झोंक देना था अतः रूसी सेना जार के विरुद्ध हो गये।

(2) सन् 1916 दृ 17 का दुर्भिक्ष रू 1916–17 में रूस में भयंकर दुर्भिक्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी। अन्न के अभाव में खाने–पीने की वस्तुओं का संकट उत्पन्न हो गया। कीमतें आकाश छूने लगी और भुखमरी फैलने लगी पर रूस केशासक व सामन्त वर्ग भोग–विलास में मस्त थे। ऐसी स्थिति में हड़तालों और दंगों का सिलसिला शुरू हो गया। सैनिक भी फौज से भागने लगे। असंतुष्ट किसान और श्रमिकों के साथ हो गये। अतः क्रांति होना निश्चित हो गया।

क्रांति का विस्फोट

विभिन्न कारणों से त्रस्त और उद्यत होकर रूस में जारशाही को समाप्त करने के लिये षड़यंत्र होने लगे। अन्त में 7 मार्च 1917 को रूसी मजदूरों ने पेट्रोग्राड में जुलूस निकाला। जार ने विद्रोह का दमन करने के लिए सैनिकों को गोली चलाने का आदेश दिया, पर सैनिक स्वयं विद्रोहियों की ओर जा मिले। उन्होंने राजधानी पर अधिकार कर लिया तथा जार निकोलस को 15 मार्च 1917 को शासन सत्ता त्यागनी पड़ी। प्रिन्स ल्योव के नेतृत्व में उदारवादी सरकार की स्थापना की गई।

नवम्बर 1917 की महान बोत्सेविक क्रान्ति

मार्च 1917 की क्रांति में स्थापित उदारवादी सरकार अधिक परिवर्तन की हिमायती नही थी। ऐसी स्थिति में जनता में असंतोष बना रहा। परिणामस्वरूप प्रिंस ल्योव ने त्यागपत्र दे दिया। तथा कारेन्सकी को रूस में सरकार बनाने का अवसर मिला। यह समाजवादी सरकार भी तीव्र सुधार नहीं कर पायी। फलतः जन असंतोष बढ़ता गया। इन्हीं दिनों रूस से निष्कासित बोल्शेविक नेता लेनिन रूस आ गया। उसके सहयोगी ट्राटस्की के नेतृत्व में 7 नवम्बर 1917 को रूस में मजदूरों ने फिर क्रांति की। राजधानी और वहाँ के कार्यलयों पर अधिकार कर लिया गया। करेन्सवी राजधानी छोड़कर भाग गया और राजसत्ता लेनिन और बोल्शेविक के हाथ में आ गयी। रूस की क्रांति पूरी हुई अब वहाँ नये शासन तंत्र श्साम्यवादश का जन्म हुआ।

अध्याय–06

राष्ट्र संघ

उपलब्धियों और असफलतायें (Leogue of NationsAchievements and Failuse)

चिरकाल से मानव की यह महती आकांक्षा रही कि अखिल विश्व में एक ऐसी व्यवस्था हो जिससे मानव व राष्ट्र एकसूत्र में आबद्ध रहे। अनेक दार्शनिकों ने ऐसी विश्व संस्था के विषय में समय–समय पर अनेक विचार प्रकट किये। यूरोपीय शासकों द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये अनेक बार विश्व संस्था की स्थापना के लिये भी प्रयास किये गये। किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल सकी।

स्वार्थ की भावना से सुख व शान्ति कोसों दूर भाग जाती है। दार्शनिकों ने विश्व शान्ति एवं विश्व कल्याण के लिये जिस संस्था की स्थापना करने की कामना प्रकट की इन यूरोपीय स्वार्थी शासकों ने उसी विश्व संस्था के नाम पर संयुक्त प्रयास इसका ज्वलंत उदाहरण है जिसके द्वारा उन्होंने क्रांति को कुचलने की भरसक कोशिश की, किन्तु इन स्वार्थी, मदान्ध, पतित तथा बहिष्कृत शक्तियों को अपने कुप्रयत्नों में रंचमात्र की सफलता न मिल सकी। इस दिशा में प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् राष्ट्र संघ की स्थापना के द्वारा प्रथम कदम इस ओर उठाया गया। इसके द्वारा विश्व में प्रथम बार छोटी–बड़े सभी राष्ट्रों को स्वतंत्र रूप से प्रगति का अवसर प्रदान करने का प्रयास किया गया, किन्तु यह विश्व संस्था भी अपने उद्देश्य में सफल न हो सकी।

राष्ट्र संघ की स्थापना (Farmation of League of Nations) – छोटे–छोटे युद्धों का परिणाम अत्यधिक भयानक एवं विध्वंसक होता है, फिर 1914–18 का युद्ध तो एक महायुद्ध था। यह कितना विध्वंसक रहा होगा, इसका अनुमान उस भय मात्र से लगाया जा सकता है। जो कि आज भी विश्व भर में के व्याप्त है। इस युद्ध के परिणामस्वरूप करोड़ों व्यक्तियों को निर्दयतापूर्वक मृत्यु घाट उतार दिया गया, अपार धन सम्पत्ति की हानि हुई, दुर्भिक्ष, महामारी,निर्धनता, बेकारी, अराजकता, अनैतिकता तथा अशान्ति के रौद्र रूप से भयभीत समस्त मानव जाति शान्ति एवं सुख की पनाह खोजने लगी, किन्तु विश्व के तत्कालीन नेताओं का ध्यान करुण क्रन्दन करती हुई निरीह मानवता की ओर एक बार क्षण मात्र को भी न गया। वे तो विजित राष्ट्रों को लूटने खसोटने के प्रयासों में संलग्न थे। उन्होंने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये 1919 में पेरिस में एक नाटकीय शान्ति सम्मेलन बुलाया और उस सम्मेलन में ही अपने को विश्व हितेच्छु सिद्ध करने के लिये राष्ट्र संघ की स्थापना का निर्णय किया, वास्तव में राष्ट्र संघ की स्थापना 1920 में स्विट्जरलैण्ड के जिनेवा नगर में की गई किन्तु तत्कालीन नेता ऐसी विश्व व्यापी पवित्र एवं कल्याणकारी संस्था की स्थापना करते समय भी अपनी लोलुप औपनिवेशिक एवं कुत्सित साम्राज्यवादी नीति का परित्याग न कर सके। उनकी इस स्वार्थी कुत्सित नीति का पालन राष्ट्र संघ की स्थापना के समय में हुआ। फलतः उसका आधार विश्व शान्ति की स्थापना करना न बन सका। उसकी ओट में उपनिवेशों की रक्षा करने के लिये साम्राज्य को इस विश्व संस्था को आगे बढ़ाने के लिये चुना गया। इस संस्था के कर्णधार पूँजीवादी अथवा साम्राज्यवादी देश थे, उनमें से प्रत्येक

अधिक से अधिक लाभ कमाने की फिक्र में थे। फलतः उनमें संघर्ष हुआ और ऐसे स्वार्थी आधार पर आधारित इस संस्था की व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गई।

राष्ट्रसंघ का संविधान

राष्ट्रसंघ का संविधान केवल चार सौ शब्दों का था जिसकी भूमिका में एक सौ दस पैराग्राफों वाली 26 धाराएँ थीं। प्रथम सात धाराओं में सदस्यता के नियमों एवं संघ के विभिन्न अंगों का वर्णन किया गया था। 8वीं व 9वीं धारा में निःशस्त्रीकरण का विवरण था। 11वीं से 17वीं धारा तक विभिन्न झगड़ों को शान्तिपूर्ण ढंग ये निबटाने, आक्रमणों को रोकने, सामूहिक सुरक्षा बनाए रखने आदि के उपायों आदि का विवरण था। 18 से 20 धाराओं में संशोधन प्रकाशन, रजिस्ट्री और वैधता का उल्लेख किया गया है। धारा 21 में मुनरो सिद्धांत की स्वीकृति है तथा धारा 22 में शासनादेश (Mandate) पद्धति तथा नारी व्यापारआदि कार्यों का उल्लेख किया गया है। धारा 24 में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के राष्ट्रसंघ से किस प्रकार के सम्बन्ध होंगे। धारा 25 में राष्ट्रसंघ और रेडक्रास तथा धारा 26 में राष्ट्रसंघ के समझौते में संशोधन करने की विधि का उल्लेख है।

राष्ट्र संघ की स्थापना का उद्देश्य (Aim of The Formation of League of Nations)

अवश्य ही यह संस्था पूँजीवादी मस्तिष्क की उपज था, जिसने अपने स्वार्थ के लिये इस नैतिक अस्त्र का आश्रय लिया था। किन्तु वास्तविकता यह है कि पूँजीवादी मस्तिष्क में विश्व मैत्री का प्रचार पनप ही नहीं सकता, फिर भी इस ऐतिहासिक तथ्य को भुलाया नहीं जा सकता कि प्रथम महायुद्ध के पश्चात् विश्वव्यापी शान्ति की स्थापना के लिये राष्ट्र संघ का निर्माण किया गया था, भले ही उसे अपने उद्देश्यों में सफलता न मिल सकी हो लीग ऑफ नेशन्स के संविधान (Covenant) की प्रस्तावना में कहा गया कि इस प्रतिज्ञा पत्र को स्वीकार करने वाले राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि के लिये स्पष्ट, न्यायपूर्ण तथा परस्पर सम्मानपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करके, राष्ट्रों के पारस्परिक व्यवहार में अन्तर्राष्ट्रीय कानून को न्याय तथा आदर की भावना दृढ़ करके युद्ध न करने की प्रतिज्ञा से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को प्रोत्साहन देने के लिये युद्ध संघ के इस संविधान को स्वीकार करते हैं। राष्ट्र संघ की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे–

1. युद्ध का अन्त करना।

2. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना करना।

3. न्याय तथा सम्मान के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करना।

4. राष्ट्रों मे परस्पर भौतिक तथा बौद्धिक सहयोग उत्पन्न करना।

5. मानव हृदय में सद्भावनाओं का विकास करना।

6. मानव के लिये सुख एवं शान्तिमय जीवन व्यतीत करने की सम्भावना जुटाना।

7. संक्षेप में राष्ट्र संघ जनमत तथा न्याय के आधार पर राष्ट्रों के पारस्परिक विवादों को सुलझाकर उनके बीच व्याप्त कटुता, घृणा, ईर्ष्या तथा द्वेष को समाप्त करना चाहता था। इसके लिये वह ऐसे प्रत्येक देश को दण्ड देने के लिये कटिबद्ध था, जो उसके सिद्धांतों की अवहेलना करके विश्व शान्ति को आघात पहुँचाता।

राष्ट्र संघ की शाखायें (Branches of League of Nations) : राष्ट्र संघ की पाँच प्रमुख शाखायें थीं–

1. साधारण सभा (Assembly)

2. परिषद (Council)

3. सचिवालय (Secretariat)

4. स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (Permanent Court of Inter National Justice)

5. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ (International Labour organization)

इसमें से प्रथम तीन अत्यधिक महत्वपूर्ण थी, यद्यपि शेष दो शाखाओं का महत्व भी कम न था। इसके अतिरिक्त आर्थिक और वित्तीय संगठन, संवाद वाहन तथा यातायात संगठन, स्थायी शासनादेश आयोग तथा बौद्धिक सहयोग का अन्राष्ट्रीय प्रतिष्ठान आदि राष्ट्र संघ के सहायक अंग थे। राष्ट्र संघ की इन पाँच प्रमुख शाखाओं का वर्णन निम्न प्रकार है–

(1) साधारण सभा (Assembly) : साधारण सभा के प्रत्येक सदस्य राष्ट्र अधिकतम सदस्यों की संख्या तीन होती थी, किन्तु विवादास्पद विषय पर उन्हें एक ही मत प्रदान करने का अधिकार था। साधारणतया इसके सदस्यों की संख्या 100 होती थी, जो अपने राज्य के अधेड़ आयु के राज्याधिकारी अथवा कूटनीतिज्ञ होते थे। 15 नवम्बर 1920 को इसकी बैठक हुई और 6 से 8 अप्रैल 1946 तक अन्तिम बैठक हुई। 19 अप्रैल 1948 को राष्ट्र संघ को भंग कर देने का निश्चय किया गया। साधारण सभा के निम्नलिखित अधिकार थे–

1. यह सभा नये सदस्यों को दो तिहाई बहुमत में भर्ती कर सकती थी।

2. 60 लाख के वार्षिक बजट को पारित कर सकती थी।

3. साधारण बहुमत द्वारा परिषद के उत्तरदायी सदस्यों का निर्वाचन कर सकती थी।

4. सभापति एवं उपसभापति का चुनाव कर सकती थी।

5. राष्ट्र संघ के व्यय में प्रत्येक राष्ट्र का भाग निर्धारित करती थी।

6. सन्धियों पर पुनः विचार कर सकती थी।

7. वैधानिक तथा कानूनी प्रश्न।

8. तकनीकी संस्थाओं के कार्य।

9. निःशस्त्रीकरण की समस्या।

10. बजट तथा आन्तरिक शासन व्यवस्था।

इन छः स्थायी समितियों के अतिरिक्त दो अन्य समितियाँ भी थी। उसमें व्यक्त किये जाने वाले विचारों को जनवाणी का प्रतिनिधि माना जाता था। अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी भाषाओं में सभा का कार्य किया जाता था।

(2) परिषद (Council) : संघ के विधान में संयुक्त राज्य अमेरिका जैसी महाशक्ति को ही स्थायी प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इन स्थीय प्रतिनिधियों के अतिरिक्त कुछ अस्थायी भी हैं। प्रारम्भ में अस्थायी सदस्यों की संख्या 4 ही थी, किन्तु 1922 में इनकी सदस्य संख्या 6, 1926 में 10 तथा 1934 में 11 हो गयी। इसके अतिरिक्त इसमें विशेष विषयों के उपस्थित होने पर उनसे सम्बंधित सदस्यों को भी आमंत्रित कर लिया जाया करता था। आवश्यकतानुसार परिषद के विशेष अधिवेशन भी आमन्त्रित किये जा सकते थे।

असेम्बली की भांति कौंसिल का कार्यक्षेत्र भी असीमित था। उसके मुख्य कार्य इस प्रकार थे–

1. महासचिव द्वारा की गई विभागीय नियुक्तियों को स्थायी करना।

2. निःशस्त्रीकरण के लिये योजनायें बनाना तथा युद्ध के खतरों को टालना तथा उन देशों को सहयोग देना।

3. आक्रामक कार्यवाही के समय सम्बंधित देशों को कर्त्तव्य पालन करने का सुझाव देना।

4. प्रतिश्रव के नियमों का उल्लंघन करने वाले सदस्यों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण झगड़ों को निबटाना था।

इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, सारघाढी, डांजिग और मिश्रित आयोगों की नियुक्ती के सम्बन्ध में भी अनेक काम करने पड़ते थे।

सभी विषय पर परिषद के अधिवेशन में विचार विमर्श किया जाता था। इसकी प्रथम बैठक 16 जनवरी 1920 को हुई तथा 24 दिसम्बर 1939 को अन्तिम बैठक हुई।

(3) सचिवालय (Secretariat) – राष्ट्र संघ का तीसरा महत्वपूर्ण अंग इसका सचिवालय था, जिसकी स्थापना संघ के सब कार्यों को संचालित करने के लिये जेनेवा में हुई थी। इसे राष्ट्र संघ का सर्वाधिक उपयोगी और सबसे कम विवादास्पद अंग कहकर पुकारा गया है। महासचिव इसका अध्यक्ष होता था जो परिषद की सम्मति से अपने सहायक कर्मचारियों को चुनता था। इस कार्यालय के समस्त अधिकारी अर्राष्ट्रीय अधिकारी थे, जो केवल महासचिव के प्रति उत्तरदायी होते थे।

यह सचिवालय निम्नलिखित 11 खण्डों में विभाजित था–

1. राजनीतिक विभाग

2. आर्थिक विभाग

3. ट्रांजिट विभाग

4. सर, डेजिंग तथा अल्पसंख्यक विभाग

5. मेडैट विभाग

6. निःशस्त्रीकरण विभाग

7. स्वास्थ्य विभाग

8. सामाजिक प्रश्न तथा अफीम के व्यापार का विभाग

9. अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सहयोग निगम

10. अल्पसंख्यक जातियों तथा आर्थिक समस्याओं से सम्बंधित विभाग

11. सूचना विभाग।

महासचिव संघ के रजिस्टार में लिखी जाने वाली विभिन्न देशों की सन्धियों के प्रकाशन का भी कार्य करता था। वे संकुचित राष्ट्र की सीमाओं से ऊँचे उठकर संघ के आदेशों के प्रति आस्था रखते हुये कार्य करते थे राष्ट्र संघ को इस कार्यालय से ही स्थायित्व प्राप्त हुआ 50 विभिन्न देशों से सम्बन्ध रखने वाले कार्य कर्ताओं की अधिकतम संख्या 750 तक रही।

(4) स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (Permanent Court of Inter National Justice) – राष्ट्रसंघ के संविधान की चौदहवीं धारा के अनुसार परिषद में अन्तर्राष्ट्रीय विवादों की सुनवाई के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की। उसके संविधान को साधारण सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया, जिसे उसने कतिपय संशोधनों के साथ दिसम्बर 1920 को स्वीकृत कर दिया। इस न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या 12 थी और चार उप न्यायाधीश होते थे। यह न्यायालय हेग में स्थापित किया गया था। न्यायाधीशों का चुनाव साधारण सभा के द्वारा 9 वर्ष के लिये किया जाता था और वह स्वयमेव 3 वर्ष के लिये अपने सभापति एवं उपसभापति का चुनाव करते थे। प्रत्येक विवादग्रस्त राष्ट्र को यह अधिकार था कि यदि उसका कोई न्यायाधीश न हो तो वह अपने पक्ष के न्यायाधीश चुन सकता था, न्यायालय के सभी न्यायाधीश निष्पक्ष तथा योग्य होते थे। इसके स्थायी न्यायालय का प्रत्येक अधिवेशन 15 जनवरी को होता था, इसका अधिकार क्षेत्र दो प्रकार का होता था। प्रथम ऐच्छिक, द्वितीय अनिवार्य। इस न्यायालय का वार्षिक व्यय 5 लाख डालर वार्षिक था, जो कि संघ के द्वारा किया जाता था।

इस न्यायालय के कार्यों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं–

1. परामर्श सम्बन्धी कार्य (Advisory Functions) – संघीय संविधान की धारा 14 के अन्तर्गत इस न्यायालय को परिषद तथा साधारण सभा दोनों को ही परामर्श देने का

अधिकार था, किन्तु वह अपने परामर्शों को मनवाने के लियेसभा तथा परिषद् को बाध्य नहीं कर सकता था। 1940 में हालैंड पर आक्रमण के पश्चात् भंग होने वाले संघ के स्थायी न्यायालय ने 27 वाद–विवादग्रस्त विषयों पर परामर्श दिया था।

2. न्याय सम्बन्धी कार्य (Judicial Functions) – न्याय सम्बन्धी कार्यों में सन्धियों का स्पष्टीकरण, अन्तर्राष्ट्रीय कानून की व्याख्या क्षतिपूर्ति की समस्याओं पर निर्णय देना तथा किसी राष्ट्र द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व का उल्लंघन किये जाने पर निर्णय देना, इसका प्रमुख कार्य था। इस न्यायालय का प्रत्येक निर्णय सम्बन्धित विषय या समस्या तक ही सीमित होता था। भविष्य के लिये उनकी कोई मान्यता न थी। इसका कानून लिखित न होकर अन्तर्राष्ट्रीय नियमों, रिवाजों, प्रयासों तथा सर्वमान्य कानून के सामान्य सिद्धांतों पर आधारित होता था।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु नहीं श्रम संघ (International Labour Organisation)– वर्साय सन्धि के भाग 13 के अनुसार श्रमिकों के हित की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की स्थापना की गई। प्रथम महायुद्ध के परिणामस्वरूप न केवल राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन हुए, वरन् आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं में महान् परिवर्तन हुए। संघ का एक उद्देश्य यह भी था कि मजदूरी करने वाले पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के लिये उचित एवं मानवीय परिस्थितियों को बनाये रखने का प्रयत्न करेगा। युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात् अनके श्रमिक बेकार हो गये, उन्हें नाना प्रकार की आधुनिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनकी दशा में सुधार की नितान्त आवश्यकता थी। 1919 में पेरिस के शान्ति सम्मेलन में श्रमिकों की दशा की जाँच करने के लिये एक आयोग नियुक्त किया गया, जिसने निम्नलिखित 8 सिद्धांतों की स्थापना की–

1. श्रम कोई व्यापारिक वस्तु नहीं है।

2. कानूनीउद्देश्यों के लिये श्रमिक तथा अधिकारी दोनों वर्गों को संघ बनाने का अधिकार है।

3. प्रत्येक एवं श्रम के अनुसार उचित जीवन स्तर बनाये रखने के लिए आवश्यक वेतन पाने का अधिकारी है।

4. कार्य करने का समय 8 घण्टे का हो।

5. रविवार सहित सप्ताह में 24 घण्टे का विश्राम काल हो।

6. शारीरिक विकास कीदृष्टि से बाल श्रम को समाप्त किया जाये।

7. स्त्री और पुरुषों को समान कार्य करने के लिये समान वेतन मिलना चाहिये।

8. उपर्युक्त नियमों को क्रियान्वित करने तथा उनको निरीक्षित कराने की व्यवस्था।

आयोग द्वारा निर्देशित उपर्युक्त सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ का निर्माण किया गया। प्रायः सभी देश इसके सदस्य थे। जिनेवा में

व्यवस्थित इस श्रम आयोग का स्वरूप राष्ट्र संघ की भांति था। इसके निम्नलिखित तीन अंग थे–

1. सामान्य सम्मेलन (General Conference) – इसमें प्रत्येक राज्य के चार प्रतिनिधि होते थे, जिनमें से एक श्रमिकों द्वारा चुना जाता था, एक मालिकों द्वारा, शेष दो सरकार द्वारा चुने जाते थे। इसे विधि निर्माण का कोई अधिकार प्राप्त न था। इसका कार्य श्रमिकों की दशा सुधारने का था। उस क्षेत्र में फैली हुई बुराइयों के प्रति यह विश्व का ध्यान आकर्षित करता था। प्रतिवर्ष इसका एक अधिवेशन होता था। इसका उद्देश्य शान्ति की स्थापना करना भी था। इसका इन विषयों से सम्बन्ध रहता था। काम करने के घण्टे, स्त्रियों और बच्चों की मजदूरी, रात्रि के कार्य, कारखानों की स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियाँ और आवश्यकतायें, बेकारी, श्रम रोजगार के कार्यालय, मजदूरों के संघ बनाने का अधिकार, जलपोतों पर काम करने की परिस्थितियाँ, कारखानों में काम करने की परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाली बीमारियाँ आदि।

2. शासक सभा (RulingAssembly) – इसमें कुल 32 सदस्य होते थे, जिनमें आठ श्रमिकों के आठ मिल मालिकों के तथा सोलह विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि होते थे। अधिकतम औद्योगिक महत्व रखने वाले राज्यों को शासक सभा में प्रधानता बनाये रखने के लिये 1922 में यह व्यवस्था की गई कि इसमें आठ प्रतिनिधि जापान, भारत, फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मन, कनाडा, बेल्जियम द्वारा चुने जायेंगे। इस सभा का मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय के संचालक का चुनाव एवं उस पर नियन्त्रण रखना था।

3. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय (International Labour Office) – जेनेवा स्थित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय का प्रधान कार्य औद्योगिक जीवन और श्रमिकों से सम्बन्धित सभी विषयों की जानकारी और सामग्री एकत्र करना, सामान्य सम्मेलन की वार्षिक बैठकों के लिये विचारणीय विषयों की तालिका प्रस्तुत करना, विश्व के विभिन्न भागों में फैली हुई श्रम कल्याणकारी संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करना था। इसने विश्व के श्रमिकों की दशा सुधारने और उनका जीवन स्तर ऊँचा उठाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है तथा विश्व शान्ति की स्थापना करने का भी प्रयत्न किया है।

राष्ट्रसंघ की उपलब्धियाँ या सफलताएँ

विश्व के राजनीतिज्ञों के समक्ष भविष्य में अन्तर्राष्ट्रीयता के आधार पर विश्व के समस्त राष्ट्रों के सम्बन्ध के पारस्परिक सहयोग, सद्भावना एवं संगठन का मार्ग प्रशस्त किया गया। राष्ट्रसंघ की सफलता के कार्यों को हम निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं– 1. प्रशासनिक कार्य, 2. सामाजिक और लोकहितकारी कार्य तथा 3. अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को निबटाना आदि।

1. प्रशासनिक कार्य : राष्ट्रसंघ का प्रमुख कार्य क्रान्ति सन्धियों की धाराओं को लागू करना था, परन्तु इसके साथ ही राष्ट्रसंघ को कुछ प्रशासनिक कार्य भी सौंपे गए थे। इनमें मुख्य रूप से दो कार्य थे– (1) सारघाटी का प्रशासन तथा (2) डेजिंग नगर का प्रशासन।

(1) सारघाटी का प्रशसन – वर्साय की सन्धि के अनुसार सारघाटी का प्रशासन राष्ट्रसंघ को 15 साल के लिए सौंपा गया था। प्रशासन का कार्य एक आयोग के द्वारा संचालित

होना था जिसका एक सदस्य फ्रेंच, एक सारवासी तथाअन्य तीन सदस्य फ्रांस और जर्मनी के मित्र राष्ट्रों के नागरिक थे। इसमें फ्रांस का बहुमत था। अतः सारघाटी के निवासियों में आयोग की कार्यवाहियों के प्रति असन्तोष था।

सारवासियों के प्रतिनिधियों का चुनाव मार्च, 1922 तक स्थगित किया जाता रहा, बाद में चुनाव भी हुआ, इस पर भी उनकी अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं की उपेक्षा की गयी। फ्रेंच विद्यालयों में जर्मन बालकों को पढ़ने के लिये बाध्य किया जाता था। 1923 में रूस के जर्मन खनिकों की सहानुभूति में सार के खनिकों ने भी हड़ताल कर दी। आयोग ने इस हड़ताल का बड़ी निर्ममता के साथ दमन किया। परिणामस्वरूप सारवासियों में पहले की अपेक्षा और अधिक रोष फैल गया। अतः परिषद् ने 1923 में जाँच की तो आयोग के प्रधान विक्टर रौल्ट (Victor Rault) ने यह स्वीकार किया कि वह सारघाटी में फ्रेंच हितों की सुरक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं क्योंकि सार में उसके नियन्त्रण में जो सशस्त्र पुलिस को रखने का आदेश दिया। इस पर 1926 में विक्टर रौल्ट ने त्याग–पत्र दे दिया और उसके स्थान पर दो अंग्रेजों को आयोग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया। सारवासियों के प्रति इनके सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा।

सारघाटी किस राष्ट्र में सम्मिलित हो, वर्साय की सन्धि के अनुसार इसका निर्णय 1935 में होना था। परिषद् ने इस कार्य को ठीक प्रकार से सम्पन्न करने के लिए प्रभावशाली कदम उठाए। 1934 में एक निष्पक्ष समिति का निर्माण किया गया जिसे जनमत संग्रह के नियमों का निर्णय करना था। 13 जून, 1935 का दिन मत संग्रह का रखा गया। चुनाव सम्पन्न होने स पूर्व सार प्रदेश में हिंसात्मक घटनाएँ फैलने की सम्भावना होने लगी, अतः राष्ट्रसंघ ने तीन हजार ब्रिटिश, इटालियन, स्वीडिश और डच सैनिकों की एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना शान्तिपूर्ण चुनाव कराने के लिए भेजी। चुनाव बड़े तनावपूर्ण वातावरण में शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो गया, लगभग 98 प्रतिशत मतदाताओं ने मतदान में भाग लिया। 90 प्रतिशत मतदाता सार को जर्मनी में मिलाने के पक्ष में थे। अतः मार्च1935 को सार का शासन संघ ने जर्मनी को सौंप दिया। वास्तव में यह राष्ट्रसंघ की सफलता का एक अनुपम उदाहरण था।

(2) डेजिंग का शासन – डेजिंग के जर्मन बन्दरगाह को पेरिस शान्ति सम्मेलन ने स्वतंत्र नगर बनाकर उसकी आर्थिक व्यवस्था पोलैण्ड को तथा शासन प्रबन्ध संघ के हाई कमिश्नर को सौंपा था। इस प्रकार की व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य पोलैण्ड को समुद्री मार्ग प्रदान करना था। राष्ट्रसंघ ने डेजिंगवासियों को अपना शासन विधान बनाने के लिए और पोलैण्ड से समझौता करने को कहा। संघ के निर्देशों के आधार पर ही उन्होंने अपने शासन के लिए एक लोकसभा और सीनेट का निर्माण किया। इस पर भी शासन की शक्ति संघ के हाई कमिश्नर के हाथ में ही रही।

पोलैण्ड और डेजिंग के सम्बन्धों में अनेक मामलों को लेकर बड़ी कटुता रही। प्रथम पाँच वर्षों में ही संघ के कमिश्नर को दोनों में विवादों के सम्बन्ध में लगभग पचास निर्णय देने पड़े। संघर्ष का अन्य प्रमुख कारण था, पोलैण्ड के गलियारे का प्रश्न, जिसने जर्मनी–पोलैण्ड संघर्ष को जन्म दिया। पेरिस के शान्ति सम्मलेन द्वारा डेजिंग के दक्षिण–पश्चिम में 260 मील लम्बी और 80 मील चौड़ी, विश्चुला नदी के दोनों किनारों की तंग पट्टी जर्मनी होते हुए समुद्री मार्ग प्रदान करने के लिए पोलैण्ड को दे दी गयी थी।

जर्मनवासी इसे राष्ट्रीय अपमान समझते थे क्योंकि उनकी मातृभूमि का विभाजन होता था। राष्ट्रसंघ डेजिंग के प्रशासन में असफल हुआ।

2. सामाजिक और लोकहितकारी कार्य – सामाजिक और जनहितकारी क्षेत्र में राष्ट्रसंघ ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। इसकी समितियों ने अनेक देशों की आर्थिक स्थिति सुधारने में और अन्तर्राष्ट्रीय यातायात के साधनों को सुधारने में विशेष योग प्रदान किया। दास प्रथा का अन्त करने, स्त्री क्रय–विक्रय का अन्त करने, महामारियों एवं भीषण संक्रामक रोगों को रोकने, अफीम के प्रयोग को कम करने, अल्पसंख्यक जातियों के हितों की रक्षा करने आदि में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की।

राष्ट्रसंघ ने सर्वाधिक प्रशंसनीय कार्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ के माध्यम से ही सम्पन्न किए। समय की आवश्यकता को पहचानते हुए श्रमिकों के हित के लिए किए कार्य महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ उदाहरणनीय हैं। मिल मालिकों तथा श्रमजीवियों के पारस्परिक संघर्षों का अन्त करने की दिशा में भी अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए।

राष्ट्रसंघ के श्रमिक संघ द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का यह लाभ हुआ कि श्रमिकों और उद्योगपतियों के मध्य जो कटुतापूर्ण तनाव का वातावरण था वह समाप्त हो गया। अब पूँजीपतियों ने श्रमिकों की दशा सुधारने की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया। उन्होंने औद्योगिक केन्द्रों पर श्रमिक अस्पतालों की स्थापना की और उनके लिए शैक्षिक विकास की सुविधाएँ भी जुटानी प्रारम्भ कर दीं।

राष्ट्रसंघ ने एक अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठन की भी स्थापना की। इस संगठन ने विश्व के प्रमुख भागों में अपने सम्मेलन भी किए। इन सम्मेलनों में मनुष्यों के कुछ असाध्य रोगों की रोकथाम के भी प्रयास किए गए। मलेरिया जैसी भयंकर महामारी की रोकथाम करके अनेक मनुष्यों को राहत दी।

राष्ट्रसंघ का अन्य जन कल्याणकारी कार्य था मादक द्रव्यों तथा विशेष रूप से अफीम के व्यापार पर नियंत्रण रखने की व्यवस्था करना। अफीम जैसा मादक द्रव्य मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो रहा था। अतः 1946 में यह घोषणा की गई कि मादक द्रव्यों का प्रयोग केवल औषधियों के रूप में ही किया जायेगा।

राष्ट्रसंघ द्वारा बौद्धिक सहयोग सम्बन्धी कार्य भी किये गये। संघ के बुद्धिजीवी सदस्यों का विचार था कि यदि विभिन्न राष्ट्रों के वैज्ञानिकों, कलाकारों, साहित्यकारों, शिक्षकों तथा लेखकों आदि के मध्य सहयोग स्थापित हो जायेगा तो विश्व शान्ति और सहयोग को भी बल मिलेगा। पेरिसा में अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सहयोग सम्बन्धी आयोग का मुख्यालय (International Commission for Intellectual Co&operation) स्थापित किया गया।

परिवहन तथा संचार सम्बन्धी क्षेत्र में भी राष्ट्रसंघ ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। एक परिवहन समिति की स्थापना की गयी जिसका प्रमुख कार्य थाअन्तर्राष्ट्रीय यात्राओं को सुविधाजनक बनाना तथा इस प्रकार के नियमों का निर्माण करना जिससे एक देश के निवासी दूसरे देश में सरलतापूर्वक आ जा सके।

प्रथम महायुद्ध के अन्त तक विश्व के अनेक भागों में बालकों और स्त्रियों के क्रय–विक्रय की प्रथा मौजूद थी। राष्ट्रसंघ की संविदा की धारा 22 में सदस्य राष्ट्रों से यह अपील की गयी थी कि वे स्त्री और बच्चों के व्यापार को रोकने के लिए ठीक पग उठायें। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए ही 1921 में एक आयोग की स्थापना की गयी।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् अनेक युद्धबन्दी कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्हें कष्ट से मुक्ति दिलाने के लिए राष्ट्रसंघ को यह उत्तरदायित्व सौंपा गया कि वह विभिन्न देशों में विद्यमान युद्धबंदियों को छुड़ाने का प्रयास करे। डॉ. नानसेन के प्रयासों से लगभग पाँच लाख युद्धबन्दियों को मुक्त कराया गया। उन्हें पुनः बसाने के प्रयास किये गये। दातव्य गृहों की स्थापना की गई। राष्ट्रसंघ के प्रयासों के परिणामस्वरूप 1922 ई. के अन्त तक लगभग सभी युद्धबन्दी मुक्त होकर अपने–अपने परिवारों में वापस जा सके। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रसंघ ने आर्थिक, सामाजिक तथा बौद्धिक क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कार्य करके मानव जाति के कल्याण मेंमहत्वपूर्ण योग प्रदान किया।

अध्याय–7

सामूहिक सुरक्षा (Collective Security)

अर्थ व परिभाषायें (MeaningAnd Definitions) : सामूहिक सुरक्षा शब्द के विभिन्न अर्थ हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न राष्ट्र सामूहिक रूप से परस्पर मिलकर किसी सम्भावित आक्रमण का विरोध करने के लिए कृत संकल्प हो जाते हैं। इसकी मान्यता है कि उनमें किसी राष्ट्र पर होने वाला आक्रमण, सभी राष्ट्रों पर किया गया आक्रमण समझा जायेगा। सामूहिक रूप से सभी राष्ट्र संगठित होकर उस आक्रमण का सामना करेंगे। सामूहिक सुरक्षा की इस व्यवस्था में विरोध स्पष्ट व समझ न होकर अस्पष्ट व सम्भावित होता है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी सुरक्षा के कार्य में रत रहता है। उनमें से किसी एक राष्ट्र पर संकट आने पर व्यवस्था के अन्तर्गत बंधे समस्त राष्ट्र उसकी सुरक्षा के लिये सामूहिक रूप से प्रयास करते हैं। सुरक्षा सिद्धांत के अनुसार किसी भी समय पर संसार में शक्ती का वितरण इस प्रकार होता है जिनमें अधिकांश शक्ति उन लोगों के हाथों में केन्द्रित होती है जो शान्ति और व्यवस्था को बनाये रखने के इच्छुक होते हैं। यही कारण है कि इस व्यवस्था के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति भंग करने का कोई भी आक्रमणकारी साहस नहीं करेगा। यदि कोई राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र पर आक्रमण करता है तो उस स्थिति में शेष सब राष्ट्र मिलकर उस आक्रमणकारी का सामना करेंगे। विभिन्न विद्वानों द्वारा सामूहिक सुरक्षा की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार सेहै–

मार्गेन्थों के अनुसार, ''सामूहिक सुरक्षा का अर्थ श्एक सबको और सब एक को सिद्धांत पर आधारित है अर्थात् एक राष्ट्र पर आक्रमण समस्त राष्ट्रों पर आक्रमण माना गया है इसमें रक्षा के लिये सहयोग विश्व के समस्त राष्ट्रों का उत्तरदायित्व है।''

समूहिक सुरक्षा की विशेषताएँ

सामूहिक सुरक्षा की निम्नलिखित विशेषतायें उसकी प्रकृति को स्पष्ट करती है–

1. राष्ट्र की सुरक्षा अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा का अभिन्न भाग : सामूहिक सुरक्षा के सिद्धांत के अनुसार किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा एक अभिन्न भाग है। इसके अनुसार किसी राष्ट्र की सुरक्षा का अतिक्रमण अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा का अतिक्रमण माना जायेगा।

2. अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का अस्तित्व आवश्यक –सामूहिक सुरक्षा का सिद्धांत यह स्वीकार करता है कि राज्यों का एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन अवश्य होना चाहिये जिससे कि आक्रमणों का सामना करने के लिए विश्वपरक शान्ति अधिपत्य स्थापित किया जा सके। यद्यपि यह सिद्धांत विभिन्न राष्ट्रों की सामूहिक शान्ति के सिद्धांत को स्वीकार करता है। किन्तु विश्व सरकार की आधीनता को स्वीकृत करता है।

3. मध्य स्तरीय व्यवस्था – सामूहिक सुरक्षा की धारणा एक ओर तो विश्वपरक शान्ति आधिपत्य का समर्थन करती है। दूसरी ओर विश्व सरकार की अधीनता को अस्वीकृत करती है। इस प्रकार से यह व्यवस्था एक मध्यम स्तरीय व्यवस्था है।

4. विश्व परक शान्ति आधिपत्य का समर्थन – सामूहिक सुरक्षा का अर्थ है विश्वपरक शान्ति आधिपत्य स्थापित करना तथा समस्त राष्ट्रों के सम्मिलित उत्तरदायत्वि के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की सुरक्षा की रक्षा करना। सामूहिक सुरक्षा के आधार पर सभी राष्ट्रों के लिये आवश्यक है कि वे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा की रक्षा करने के लिये आक्रमण के विरुद्ध सामूहिक युद्ध हेतु तैयार रहे। सामूहिक सुरक्षा हेतु किये जा रहे युद्ध में तटस्थता की धारणा को स्वीकार नहीं किया जाता।

5. सामूहिक सुरक्षा एक निवारक व्यवस्था –सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था किसी भी राज्य के लिये एक प्रभावशाली निवारक व्यवस्था है। प्रत्येक राष्ट्र को यहजानकारी होती हैं कि उसके द्वारा किसी भी राय के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने पर उसका प्रत्युत्तर समस्त राष्ट्रों की सामूहिक शक्ति द्वारा दिया जायेगा। यह तथ्य राष्ट्रों की आक्रामक नीतियों पर अंकुश लगाता है।

पूँजीवाद का संकट : 1930–32 महान आर्थिक संकट

प्रथम विश्व युद्ध से उत्पन्न कठिनाइयों पर यूरोप 1920 ई. तक विजय प्राप्त कर चुका। क्षतिग्रस्त राष्ट्रों ने अपने घाव बहुत कुछ भर लिये थे और सर्वत्र आशावादी वातावरण लगा था। जर्मनी की आर्थिक स्थिति काफी सुधर गयी थी। नये राज्यों में आर्थिक स्थिरता की गयी थी। विश्व में कच्चे माल एवं खाद्य पदार्थों का उत्पादन 11 प्रतिशत बढ़ गया था। कारखानों में बनने वाली वस्तुओं का उत्पादन भी 26 प्रतिशत बढ़ गया था। रूस ने क्रान्ति से उत्पन्न स्थिति का सामना करके अपने करोड़ों लोगों के लिये पंचवर्षीय योजना का कार्य आरम्भ कर दिया था। लेकिन उत्पादन के अनुपात में प्रति व्यक्ति आय नहीं बढ़ सकी जिससे देशों में अतिशय उत्पादन की स्थिति पैदा हो गयी। वास्तव में यह स्थिति प्रचुरता में निर्धनता की थी।

सन् 1929 में संसार की स्थिति अचानक बदल गयी। न्यूयार्क के शेयर बाजार वाले स्ट्रीट में अचानक की जबरदस्त मन्दी छा गयी। शेयरों का मूल्य 50 अरब डॉलर गिर गया। इस महीने महान मन्दी के बारे में आर्थर लुई ने लिखा है – 1929 में जो अवसाद आरम्भ हुआ। वह कोई साधारण मन्दी नहीं थी, बल्कि आधुनिक इतिहास में अपने दीर्घ विस्तार कठोरता सबसे भयावह मन्दी थी। सबसे खराब स्थिति तो 1932 में आयी जब बेरोजगारी की संख्या बढ़ते–बढ़ते तीन करोड़ तक पहुँच गयी। अमेरिका तब ही सीमित न रहकर विश्व के सभी देशों में फैल गयी। इसलिये इसे विश्वव्यापी मन्दी अथवा जैसे नामों से सम्बंधित किया जाता है।

अक्टूबर 1929 में अमेरिका के मुद्रा बाजार में सट्टेबाजी का एक तीव्र दौर आया जिसने आम अमेरिकी महाजनों का धन आकर्षित किया और इसके परिणामस्वरूप अमेरिका के धन कुबेर भी यूरोप को धन देने के बजाय अपने हीदेश में पूंजी लगाने लगे। यूरोप उस समय अमेरिकी ऋणों के आधार पर टिका हुआ था, सहसा आधारहीन हो गया और यूरोपीय अर्थव्यवस्था डगमगा गई। वस्तुओं की कीमतें गिरने लगी। बैंकों के लिये रुपया अदा करना कठिन हो गया, बैंक फेल हो गये, कारखानों और अन्य धन्धों को भारी घाटा उठाना पड़ा। लाखों मजा बेकार हो गये।

यह भीषण आर्थिक मन्दी थी जो 1929 में आरम्भ हुई 1931 में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई और उसके पश्चात् 1934 तक उसका प्रभाव बना रहा। इस मन्दी के कारण ही ब्रिटेन ने स्वर्णमान का परित्याग कर दिया। अब उसके सिक्कों का सोने से कोई सम्बन्ध नही रहा। ब्रिटेन की इस नीति का अनुसरण भारत, नार्वे, डेनमार्क, फिनलैण्ड रोडेशिया आस्ट्रिया, जापान, पुर्तगाल, रुमानिया, चीन, यूनान, फारस आदि देशों ने भी किया।

विश्व के कई देशों ने निर्बाध व्यापार नीति को छोड़ अपनी परम्परागत आर्थिक नीति अपनायी इससे अमेरिका को भी यह प्रेरणा मिली कि आर्थिक सिद्धांतों को वह छोड़ दे और आर्थिक क्रियाओं पर सरकारी नियंत्रण जारी करे।

आर्थिक मन्दी के कारण

1. व्यापार चक्रका प्रभाव – लिप्सन की मान्यता है कि आर्थिक शिथिलता का चक्र एक अजीब नियम के अनुसार चलता है। 1662, 24 इंग्लैण्ड में व्यापार मन्दी आयी थी तब एक शाही कमीशन नियुक्त हुई जिसने शिथिलता के वे ही कारण बतलाये थे जो 1929–32 की शिथिलता के कारण बतलाये गये।

2. प्रथम विश्व युद्ध से उत्पन्न परिस्थितियाँ – प्रायः युद्ध के समय ऐसी परिस्थितियों उत्पन्न हो जाती हैं। जिससे आर्थिक स्थिति उत्पन्न होती है। जे.बी. काडलिफ के अनुसार,''युद्ध काल में सैनिक मामलों की मांग जाने से उद्योगों की असाधारण विस्तार होता है। सैनिकों की असाधारण भर्ती के कारण मजदूरों की कमी हो जाती है। अतः रोजगार मजदूर और लाभ की दर भी बढ़ जाती है। युद्ध समाप्ति के बाद कुछ समय तक यह अभिवृद्धि बनी रहती है'' किन्तु उसके बाद मन्दी आ जाती है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भी यही घटना क्रम चला और सम्पूर्ण संसार इस मन्दी की चपेट में आ गया।

3. कृषि उपज व औद्योगिक वस्तुओं का अति उत्पादन –युद्ध काल की अतिरिक्त माँग की पूर्ति के लिये कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन बढ़ाया गया था, साथ ही इन वस्तुओं की कीमतों में भी वृद्धि हुई थी। वैज्ञानिक खोजों और नये मन्त्रों के प्रयोग से उत्पादन बढ़ाने में सहायता मिली थी। तथा लोगों की क्रय शक्ति कम होने लगती है। परन्तु उत्पादन उसी गति से बढ़ता है।

4. सोने का विषय विभाजन –प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् संसार का बहुत अधिक सोना अमेरिका और फ्रांस में एकत्र होने लगा। अन्य देशों में सोने की कमी हो गयी। सोना मुद्रा स्फीति के आधार होता है। अतः जब सोने की कमी हो गयी तो सिक्के की कीमत बढ़ गयी और वस्तुओं की कीमतें गिर गई।

5. संकुचित आर्थिक राष्ट्रीयता – विभिन्न राज्यों ने विदेशों से आने वाले माल पर उच्च सीमा शुल्क लगाये विदेशों से आपात की मात्रा निश्चित की, अप्रवास नियंत्रण हेतु कानून बनाये और विदेशी राज्यों के विरुद्ध कई प्रकार से आर्थिक पक्षपात की नीति अपनायी मुक्त व्यापार के समर्थक इंग्लैण्ड ने अब अपने राष्ट्रीय उद्योगों की सुरक्षा की दृष्टि से संरक्षण की नीति अपनाना शुरू किया। एशिया में स्वदेशी आन्दोलन, रूस में बोल्शेविक क्रान्ति तथा युद्ध के फलस्वरूप यूरोप के नये स्थापित राज्यों की संरक्षण नीति से पश्चिमी यूरोप के

हाथ से एक बड़ा बाजार निकल गया। इसका प्रभाव युद्ध ऋण अथवा क्षतिपूर्ति का भुगतान करने वाले देशों के लिये अहितकर था।

6. सट्टेबाजी की बढ़ती हुई प्रवृत्ति –अक्टूबर 1929 के मुद्रा बाजार में सट्टेबाजी का तीव्र दौर आया जिसने आम अमेरिकी पूँजीपतियों का ध्यान आकर्षित किया। इन्होंने यूरोप के देशों को ऋण देने के बजाय अपने देश में पूँजी लगाना शुरू किया। प्रारम्भिक वर्षों में पूँजीपतियों को लाभ हुआ। फलतः जनवरी 1925 और अक्टूबर 1929 के बीच की अवधि में न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंज में अंशों की संख्या 4434 से 100 करोड़ हो गयी। अंश अपने अंकित मूल्य से 20 गुणा अधिक मूल्य पर बिक रहे थे। 29 अक्टूबर 1929 के बाद शेयर बाजार में गिरावट आरम्भ हो गयी और यूरोपीय अर्थव्यवस्था चरमरा गयी।

आर्थिक मंदी या सकंट के परिणाम

1. आर्थिक अस्थिरता – इस आर्थिक संकट में सरकार व समाज के प्रत्येक वर्ग की कठिनाई तथा हानि हुई। सरकारी बजट में घाटा आया इससे सरकार को करों में वृद्धि करनी पड़ी। बहुत से कारखाने बन्द हो गये। लाखों मजदूर बेकार हो गये। गोदाम वस्तुओं से भर गये, परन्तु उनका कोई खरीददार नहीं था। और पूंजीपति वर्ग भी संकट में आ गया था। सरकार ने ब्याज की दर कम कर दी थी। बेरोजगारों को भत्ता दिया जाने लगा किन्तु धन के अभाव में सरकार को अपने कार्य में सफलता नहीं मिल सकी थी।

2. असुरक्षा की भावना एवं अधिनायकतन्त्र को प्रोत्साहन – आर्थिक संकट ने विश्व के उद्योग को बर्बाद कर दिया था। उसका बड़ा महत्वपूर्ण परिणाम राजनीतिक क्षेत्र में भी हुआ जिस भी देश की आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। और परम्परा के अनुसार एक दूसरे पर बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। और मन्दी के कारण जनता सभी वर्गों को भुखमरी आदि अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। कई राज्यों में जनता के सत्तारूढ़ दलों के विरुद्ध मत देकर उन्हें अपदस्थ कर इटली में मुसोलिनी तथा जर्मनी में हिटलर जैसे तानाशाहों का उदय हुआ।आस्ट्रिया, स्पेन, हंगरो, यूगोस्लाविया, पोलैण्ड, पुर्तगाल, यूयान, बल्गारिया, रोमानिया, तथा एस्टोनिया आदि देशों में भी किसी रूप में अधिनायकतंत्र की लहर आयी।

3. साम्यवाद की ओर आकर्षण – लोग पूँजीवाद का विरोध कर सायवाद की ओर आकर्षित होने लगे। इस कारण पूँजीवाद देशों ने हिटलर तथा मुसोलिनी के साथ तुष्टीकरण की नीति अपनाकर उन्हें साम्यवाद के विरोध में खड़ा किया।

4. नियन्त्रण में वृद्धि – आर्थिक मन्दी के कारण संसार विभिन्न राज्यों में प्रशासकीय नियन्त्रण में भी वृद्धि हुई। निरन्तर गिरती हुई कीमतों तथा मूल द्य उत्पादकों की अत्याधिक निर्धनता एवं दयनीय स्थिति के कारण राज्यों को अनेक कानून एवं व्यवस्थाएँ बनानी पड़ी सीमा शुल्क आदि परम्परागत साधन मन्दी की स्थिति का सामना करने के लिए अपर्याप्त सिद्ध हुये हैं। अतः कई राज्यों को विपणन, मूल्य निगमन पूँजी विकास एवं वितरण पर नियन्त्रण स्थापित प्रकार के करना पड़ा।

5. सैन्यवाद का उदय – आर्थिक मन्दी ने जापान का सारा व्यवसाय ठप्प कर दिया था। अतः जापान के लोगों ने अपने सैनिक नेताओं का समर्थन संकट से उत्पन्न असन्तोष की

आग ने जपानियों को लालची और आक्रामक बना दिया। अन्य राजनीतिक कारणों से प्रभावित होकर जापान ने 1931 मे मंचूरिया पर चढ़ाई कर दी।

6. फासीवाद का उदय – मन्दी के कारणों अधिकांश मध्य यूरोपीय देशों में तथा दक्षिण अमेरिका के एक बड़े भाग में, अर्ध फासिस्ट सरकारें कायम हो गई। इसके साथ ही लगभग सभी पूँजीवाद देशों में फासिस्ट आन्दोलन प्रारम्भ हो गए। दक्षिण अमेरिका में फासीवाद का सर्वाधिक प्रभाव पेरू तथा बोलिविया में पड़ा, जहाँ फासीवाद सरकारें स्थापित हो गयी।

7. शस्त्रीकरण की दौड़ – आर्थिक संकट का और महत्वपूर्ण परिणाम यह भी हुआ कि विभिन्न राष्ट्र अपनी सुरक्षा हेतु शस्त्रों के उत्पादन प्राथमिकता देने लगा क्योंकि सभी राष्ट्रों में परस्पर सन्देह और अविश्वास के अंकुर फूटे थे।

8. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना की समाप्ति – संकुचित राष्ट्रीयता के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग सौहार्द की भावना, जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक समस्याओं को हल करने के लिये आवश्यक समाप्त हो गयी।

9. विलसन की घोषणाओं के थोथेपन का प्रगटीकरण – आर्थिक संकट के समय एक और तथ्य सामने आया कि विश्व बन्धुत्व की बड़ी–बड़ी बातें जो बिलसन के सुझावों तथा राष्ट्र संघ की भाषाओं में कही गयी थी। वास्तव मेंथोथी थी क्योंकि संकट के समय हर देश ने अपने–अपने देश के लिये कार्य किया। कुछ समय पश्चात् केवल अमेरिका का राष्ट्रपति रूजवेल्ट ही एक अपवाद सिद्ध हुआ, क्योंकि उसने अपने देश को युद्ध सीमा तक क्षति पहुँचाते भी, यूरोपीय अर्थ, व्यवस्था को बचाने का प्रयास किया था।

अध्याय–8

उदारवादी विचार तथा सामाजिक आन्दोलन

यूरोप में उदारवादी विचारों का विकास रू उदारवाद से तात्पर्य है–मर्यादित स्वतंत्रता एवं समानता। उदारवाद के अर्थ से स्पष्टीकरण अध्याय 3 में किया जा चुका है। उदारवाद एक ऐसी विचारधारा है जो अधिकांश क्षेत्रों को सरकारी नियंत्रण से मुक्त रखना चाहती है। 18वीं 19वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में उदारवादी का पर्याप्त विकास हो चुका था किन्तु विभिन्न देशों में इसका स्वरूप भिन्न–भिन्न था। उदारवाद की कतिपय सामान्य विशेषताएँ अग्रलिखित थीं। संविधान जनता का प्रमुख विधि के समक्ष समानता, प्रजातन्त्रवाद, निरंकुशता एवं असहिष्णुता का विरोध तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता आदि। यूरोपीय पुनर्जागरण एवं धर्मसुधार आन्दोलन ने भी उदारवादी के जन्म एवं विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

उदारवादी विचारों का विकास होने से धर्म निरपेक्ष को प्रोत्साहन मिला तथा पर्चा निरंकुशता प्रतिबंधित हो गयी। उदारवादी चेतना का विकास होने से ही ब्रिटेन में मन्त्रिपरिषद प्रथा का विकास हुआ तथा 1832 ई. 1867 ई. के अधिनियम के द्वारा क्रमशः एवं महिलाओं को मताधिकार किया गया।

विज्ञान के विकास एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने भी उदारवाद के विकास में सहयोग योगदान दिया। विभिन्न वैज्ञानिक खोजों के आधार पर यह स्वीकार किया जाने लगा कि भौतिक विश्व अपरिवर्तनीय नियमों द्वारा संचालित है। और मनुष्य इन नियमों की करने में सक्षम है। इस प्रकार मनुष्य स्वयं ही अपनी समस्याओं को सुलझा सकता है।

काल में प्रगतिवादी विचारकों एवं दार्शनिकों के द्वारा भी इस तथ्य का समर्थन किया गया। इन विचारों अनुभववाद एवं व्यवहारवाद का भी प्रबल समर्थन किया तथा मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों, जीवन की स्वतंत्रता सम्पत्ति के अधिकारों शक्ति प्रथक्करण एवं सम्प्रभुता के सिद्धांत आदि की विस्तारपूर्वक व्याख्या की। इस प्रकार उदारवाद के विकास में अग्रलिखित तत्वों का योगदान रहा– 17वीं, 18वीं शताब्दी में ऐसे आधारभूत लक्षण एवं विचार अस्तित्व में आ गये थे।

शनैः शनैः यूरोप में उदारवाद की भावना जोर पकड़ने लगी। इस धारणा को मान्यता प्राप्त हुई कि कोई भी नैतिक उद्देश्य ऐसे नहीं हो सकते जिन्हें कि पूर्णरूप सही समझा जाये और राज्य के सभी नागरिकों पर एक समान जीवन–शैली आरोपित की जा सके। यह धार्मिक सहिष्णुता उदारवादी दर्शन अभिन्न अंग बन गयी।

प्रसिद्ध राजनीतिक विचारकों जे०एम०मिल ने भी उदारवादी दर्शन की व्याख्या की है। मिल के अनुसार, ष्स्वतंत्रता को किसी भी प्रकार से प्रतिबंधित करना राज्य के लिये वांछनीय नहीं है। मिल की मान्यतानुसार व्यक्ति केवल उन्हीं कार्यों पर राजसत्ता द्वारा न्यायोचित प्रतिबंध लगाये जा सकते हैं।

कतिपय अन्य विचारकों यथा बेन्थम, मॉण्टेस्क्यू एवं एडम स्मिथ ने भी उदारवाद के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुये समन्वित रूप से यह स्वीकार किया कि प्रत्येक व्यक्ति

अपने मामलों का सर्वश्रेष्ठ निर्णायक है। और मनुष्य की विवेकीकरण पर विश्वास किया जाना चाहिए।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नकारात्मक उदारवाद का स्थान सकारात्मक उदारवाद ने ले लिया। मिल व ग्रीन ने उदारवादी सिद्धांतों में महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रस्तुत किये। उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में अहस्तक्षेप की नीति के स्थान पर राज्य का उद्देश्य व्यक्ति के समान कल्याण में वृद्धि करना घोषित किया 20वीं शताब्दी में भी यह विचार उत्तरोत्तर विकसित होता है।

मुसोलिनी और फासीवाद

बेनिटो मुसोलिनी का जन्म 1883 में रोमान्या के एक ग्राम में हुआ था। उसका पिता एक लुहार था। तथा उसके विचार उग्र क्रान्तिकारी थे। मुसोलिनी में भी इन विचारों का प्रभाव पड़ा।

18 वर्ष की आयु में अपनी आरम्भिक शिक्षा समाप्त होने के उपरान्त वह शिक्षक हो गया। इसी समय उसने श्सोशल डेमोक्रेटिक दल के सिण्डीकेलिस्टपक्ष से अपना सम्बन्ध जोड़कर यूनियनों की स्थापना करना तथा हड़तालों को प्रोत्साहित करना प्रारम्भ किया। 1908 में कृषक आन्दोलन में भाग लेने के कारण उसे जेल जाना पड़ा।

मुसोलिनी ने प्रचार करना आरम्भ किया कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से ट्रेण्ट इटली का ही भाग है। 1912 में वह इटली के प्रधान समाजवादी पत्र अयण्टी (Avanti) का सम्पादक बन गया। 1914 ई. में प्रथम महायुद्ध आरम्भ होने पर इटली के युद्ध में सम्मिलित होने के प्रश्न पर मतभेद था। समाजवादी नहीं चाहते थे कि इटली युद्ध में हिस्सा ले किन्तु मुसोलिनी चाहता था। अपने इन्हीं विचारों के कारण मुसोलिनी ने समाजवादी पत्र से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया तथा एक नया समाचार पत्र Popoled Italia निकाल कर अपने विचारों का प्रचार करना आरम्भ कर दिया।

1915 में इटली के युद्ध में शामिल होने पर वह स्वयं भी एक साधारण सैनिक के रूप में सेना में भर्ती हो गया। इस क्रांति में मजदूरों और सर्वसाधारण जनता को विशेष रूप से भाग लेना चाहिए। 1917 ई. में युद्ध में घायल होने पर उसे वापस लौटना पड़ा तथा पुनः अपने पत्र का सम्पादन किया। किन्तु मुसोलिनी ने साम्यवादी व्यवस्था को इटली के राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध बताकर उसका विरोध किया तथा इटली में एक नवीन व्यवस्था फासीवाद की स्थापना की। फासीवाद के उदय के निम्नलिखित कारण थे–

(1) आर्थिक दशा (Ecomomic Condition)– इटली का स्थान अभी नवोदित राष्ट्रों की श्रेणी में रखा जाता है। इसको अपना एकीकरण किये थोड़ा ही समय हुआ था। अभी शासन की सुव्यवस्था का वहाँ पूर्णतः अभाव था। वहाँ पर प्रत्येक क्षेत्र में कोई न कोई अभाव प्रतीत होता था।

उदाहरण स्वरूप वहाँ की आर्थिक दशा अत्यंत सोचनीय थी। वहाँ जनता का समुचित विकास न हो सका और विकासीय योजनाओं का भी अभी प्रचलन न हो सका था। युद्ध के संचालन एवं अस्त्र शस्त्र के निर्माण के कारण उसमें अत्यधिक व्यय करना पड़ा। जिससे उसकी आर्थिक अवस्था शोचनीय हो गयी।

वह भयंकर विभीषिका के कारण ऋण लेता गया, धीरे–धीरे यह ऋण अत्यधिक हो गया। यहाँ सिक्कों का मूल्य गिरने लगा, मुद्रा का संकुचन दोष के पश्चात् स्पष्ट होने लगा। उद्योग एवं व्यापार को भयंकर आघात पहुँचा। युद्ध सैनिक बेकार हो गये। औद्योगिक विकास की कमी के कारण जनता में बेकारी की समस्या विकटता से फैली थी।

(2) साम्यवाद का उदय (Rise of Communism) – 1917 की रूसी क्रांति के पश्चात सम्पूर्ण यूरोपा में साम्यवादी विचारधारा का उदय हुआ था। विश्व में प्रथम बार में साम्यवादी अधिनायकतंत्र की स्थापना हुयी। और श्रमिक एवं कृषक वर्ग के हाथों राजनैतिक जीवन–वृत्ति की उसकी कोई तैयारी नहीं थी। धीरे–धीरे सभी देशों का निम्न वर्ग अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगा।

साम्यवादियों ने जनता के दुखों एवं विपन्न जीवन से लाभ उठाकर साम्यवाद का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। वे सरकार के विरुद्ध कार्यवाही किया करते, आन्दोलन प्रदर्शन एवं विरोधी सभायें करते, इससे जनता संगठित हो चुकी थी। सरकार जनता के आन्दोलनों को जितना दबाना चाहती है। आन्दोलनों में उतनी ही तीव्रता आने लगती है।

इस कारण देश की शासन व्यवस्था में अस्त–व्यस्तता का प्राबल्य था।

(3) वर्साय की सन्धि (Treaty of Versailles) – प्रथम महायुद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी की पराजय से लाभ उठाने के लिए, अपमान का बदला लेने के लिये वर्साय सम्मेलन की मांग की।

फ्रांस ने 1870 की सन्धि का पूर्णतः बदला ले लिया। इतिहासकारों के अनुसार यह सन्धि बदले की सन्धि मात्र थी। उसने अफ्रीका प्रदेशों पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए इस युद्ध में भाग लिया। लेकिन उसको ये प्रदेश प्राप्त न हो सके थे। निर्विवाद रूप से इटली की गणना 4 महान राष्ट्रों में की गयी थी।

वर्साय की संधि के अनुसार अधिकांश निर्णय फ्रांस और इंग्लैण्ड के पक्ष में रहे। आपरलैंडों को अत्यधिक निराशा हुयी, फिर उसने कोई रुचि न लेने की मौखिक सन्धि के बारे में योजना बनायी। जनता ने अफ्रीका के सम्मिलित न होने के लिए सरकार को दोषी ठहराया। उसने सरकार की कटु आलोचना की और उसका ध्यान सरकार को बदलने की ओर गया।

(4) सरकार की दोषपूर्ण शासन नीति – सरकार की नीति अत्यधिक दुर्बल थी वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति न कर सकी। जनता में उसके प्रति असन्तोष के भाव सघन हो गये। शासन में अराजकता फैल गयी। चारों ओर विद्रोह एवं क्रांन्ति की विचारधारायें पनप रही थीं ऐसा विदित होता था कि शीघ्र ही इस सरकार का अन्त हो जायेगा। लेकिन इन परिस्थितियों में भी सरकार ने कोई ठोस कदम न उठाये कोई प्रयत्न न किये। उसने जनता को सन्तोष दिलाने या आन्दोलनों को दबाने के लिए प्रयत्न न किये। इससे इटली की दशा दिन पर दिन बिगड़ती गयी।

(5) असन्तोष का साम्राज्य (Discontentment) – इटली के राजनीतिज्ञों एक अजीब जोश उत्पन्न हो गया था। वे शासन की नवीन व्यवस्था स्थापित करने के लिए प्रयत्न करने लगे।

फलतः नवीन विचारधाराओं का जन्म हुआ। नवीन ब्लाकों की स्थापना हुयी एवं नेताओं का जन्म हुआ। जोकि देश की शासन व्यवस्था को मोड़ देने का प्रयत्न कर रहे थे।

ज्नता का संगठन करने के लिए गुप्त समितियों एवं गुप्त सभाओं का आयोजन किया जाता था। जिनके द्वारा उनके अन्दर नवीन विचारों को आरोपित करने का प्रयत्न किया जाता था।

(6) स्वतंत्रता की भावना (Feeling of Freedom) – जनता में स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयत्न निरन्तर हो रहे थे। अन्य देशों की स्वतंत्रताओं ने इनको प्रभावित किया। इटलीवासी अपनी स्वतंत्रता के लिए लालयित हो गये। इस समय विभिन्नप्रदेशों ने इस विषय में सफल प्रयास किये। सम्पूर्ण इटली में स्वतंत्रता को स्थापित करने के प्रयत्न हो रहे थे।

(7) फासिस्ट दल का उत्थान (Rised of Fascist Party) – इटली की दलों का गंभीर स्थिति से फासिस्ट दल ने लाभ उठाया। उसने समस्त असन्तुष्ट नेतृत्व किया मुसोलिनी ने इस दल का नेतृत्व ग्रहण किया। इटली की सरकार ने उसे अपना रक्षक समझ लिया था। उसने सरकार की सहायता से अपनी शक्ति में वृद्धि कर ली। उसने विरोधी दलों को समाप्त करके सरकार की ओर ध्यान दिया।

मुसोलिनी एवं उसका दल (MussoliniAnd His Party)

फासिस्ट दल की उन्नति (Progress of Fascist Party) – देश में अराजकता का शासन था नवीन विचारों का निरन्तर उदय हो रहा था। ऐसी बड़ी आशा की जा रही थी कि शीघ्र ही शासन में परिवर्तन होगें। ऐसी स्थिति में मुसोलिनी पर अधिक प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त महायुद्ध की समाप्ति पर मित्र राष्ट्रों ने इटली के साथ अत्यन्त निराशापूर्ण व्यवहार किया। परिणामस्वरूप क्षुब्ध होकर मुसोलिनी ने फासिस्तो गुटों का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया।

फासिस्ट शब्द की उत्पत्ति लेटिन के फेसियो (Fascio) शब्द से हुयी। प्राचीन रोम में 'Fasces' अर्थात् कुल्हाड़ी सहित छड़ियों का एक गट्ठर (Bundle of rods with onAxe) को सत्ता का चिन्ह माना जाता था। यह चिन्ह अनुशासन और शक्ति दर्शाता था।

फासिस्ट एक राजा, एक नेता, एक झण्डा और सैनिकवाद में विश्वास रखते थे। राज्य की शक्ति और सत्ता में वृद्धि शसक्त विदेशनीति एवं सैनिक संगठन तथा देश की आर्थिक उन्नति करना था। फासिस्ट राज्य को सर्वोच्च मानते थे। मुसोलिनी का कहना था कि ष्राज्य के भीतर सब कुछ है, राज्य के बाहर कुछ नहीं, राज्य के विरुद्ध भी कुछ नहीं मुसोलिनी द्वारा 1919 में स्थापित इस फासिस्ट दल के प्रत्येक सदस्य को शपथ लेनी होती थी। ''मैं बिना किसीतर्क वितर्क के मुसोलिनी के आदेशों का पालन करूँगा तथा आवश्यकता पड़ने पर अपना रक्त देकर भी फासिस्ट क्रान्ति का लक्ष्य प्राप्त करूँगा।" यह

लोग काले कपड़े पहनकर परेड किया करते थे। उनके भाषण में जादू था। उसने विभिन्न दलों को उसमें मिला लिया।

सन् 1921 में दल के क्लबों की संख्या 2000 से ज्यादा पहुंच गयी। उसके 30 लाख से ज्यादा सदस्य थे।

1922 में उसने अपनी शक्ति का अहसास कराने के लिए फासिस्ट दल का अधिवेशन बुलाया उसमें असंख्य सदस्यों ने भाग लिया। उसने इसी अधिवेशन में देश की सरकार से अपील की कि वह देश का शासन उसके हाथों में सौंप दे। अन्यथा वह रोम पर चढ़ाई करने वाला है। फासिस्ट दल के सदस्य रोम की ओर बढ़ने लगे। विवश होकर राजा ने मुसोलिनी को मन्त्रिमण्डल बनाने का आदेश दिया।

इस विषय में हेजन का कथन है, ''वह निस्संदेह एक क्रियाशील और खुलकर लड़ने का अभ्यस्त व्यक्ति था।''

फासिस्ट दल के सिद्धांत (Primciples of Fascist Party)

1. लोकतंत्र शासन में पूँजीपति अमीर हो जाता है। और उन्हें गरीबों के शोषण का अधिक अवसर मिलता है। इसलिए फासिस्ट के अनुसार राजनैतिक विधान में सबके बराबर होने से गरीबों की समस्या का अन्त ही नहीं होता वरन् गरीबों की समस्या ही अत्यधिक विकट होती है।

2. फासिस्ट सिद्धांत के अनुसार समाज के हितों के सम्मुख सभी के हितों कोई स्थान नही है। सबकी उन्नति में ही प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति है। सामूहिक हितों के लिए व्यक्तिगत हितों को बलिदान किया जा सकता है फासिस्ट दल ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता था जिसमें लोकप्रियता की भावना सर्वोच्च होगी।

3. इस दल के अनुसार राज्य के ही लिए नागरिकों का कर्तव्य होता है। वह इस बात विश्वास नही रखती थी कि नागरिकों के लिए राज्य की रचना होती है। व्यक्ति को प्रमुखता न देकर इसने राज्य को प्रमुखता प्रदान की।

4. फासिस्ट दल लोकतंत्र के विरुद्ध था उसमें पार्टी के मतानुसार गुणों को प्रधानता दी जाती थी। यह बहुमत की विरोधी पार्टी थी। फासिस्ट लोग बहुमत का विरोध करते हुये तर्क उपस्थित करते थे। कि देश का सर्वमान्य नेता, जिसका कि वह विश्वास जनता की ही जो जनता की इच्छाओं का प्रतिनिधि हो देश का वास्तविक शासक है।

जर्मनी में नाजीवाद के उत्थान के कारण

नाजीवाद के संस्थापक हिटलर ने अपने सब प्रणाली से नाजीदल का शिलान्यास किया। उसके हृदय में राष्ट्रीयता की भावनायें विद्यमान थी। वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जर्मनी के उस सम्मान को पुनर्स्थापित करना चाहता था। इस दल के सदस्यों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। आरम्भ में इस दल में केवल सात सदस्य थे। लेकिन निरन्तर उसके सदस्यों की वृद्धि होती रही। 1919 ई. में जब इस दल का निर्माण हुआ था। तब यह एक साधारण सागुट था। फिर इस दल में अधिकार प्राप्त किया।

नाजी दल की शाखायें प्रत्येक नगर में खोली गयी 1932 में हिटलर नाजी दल की ओर से चांसलर बना और 1934 में उसने राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री पद को मिश्रित कर शासन की समस्त सत्ता पर अपना एकाधिकार स्थापित किया।

इसके कारण निम्नलिखित हैं–

(1) जर्मनी का उत्थान – मित्र राष्ट्रों में जर्मनी से वर्साय की सन्धि में बदला ले लिया था। उसके ऊपर ऐसी शर्तें लगायी गयी, जिनसे कि विश्व राजनीति में जर्मनी का अपमान हुआ। उसकी आर्थिक दशा दिन–प्रतिदिन बिगड़ती गयी। उसकी सम्पूर्ण उन्नति को धूल में मिला दिया गया। फ्रांस ने अपने अपमान का पूर्णतः बदला ले लिया था। इसलिए वर्साय की संधि को बदले की भावना भी कहा जाता है।

नित्यप्रति वहाँ के राजनीतिज्ञ दिशा में सुधार करने के लिए योजनायें बनाया करते थे। गणतंत्रात्मक सरकार ने यद्यपि सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाया था। लेकिन वह अन्तर्राष्ट्रीय जगत में जर्मनी का स्थान निर्धारित न कर सकी। परन्तु अब उसका स्थान निम्न हो गया था। जर्मनी के नवयुवकों में बेकारी फैली हुयी थी। ऐसे समय में हिटलर एक वर्ष की अवधि व्यतीत कर जेल से निकला। हिटलर के प्रभावपूर्ण एवं ओजपूर्ण भाषणों का प्रभाव नवयुवकों पर पड़ा। वे इस दल के सदस्य बनते चले गये।

शीघ्र ही अपने पूर्व सम्मान को ग्रहण कर लेगा। हिटलर के नेतृत्व में जनता ने अपना कंटकपूर्ण मार्ग तय करना चाहा। इस पर नाजीवाद का अत्यधिक महत्व बढ़ा। वह नित्य प्रति उन्नति की। हिटलर के बढ़ते प्रभाव के विषय में डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार का कथन है–''जिस समय जर्मनी के गणतंत्रवादी और साम्यवादी नेता वर्साय के संधि के अनुसार युद्ध के हरजाने की रकम के भुगतान के बारे में सुविधायें प्राप्त करने के लिए मित्र राष्ट्रों से समझौते कर रहे थे। इस शक्ति ने न केवल वर्साय की संधि को पैरों तले कुचल दिया। कुछ समय के लिए सम्राट विलियम द्वितीय के जर्मनी के स्वप्न को भी क्रियारूप में बदल दिया, यह शक्ति हिटलर था।''

(2) आर्थिक व्यवस्था –युद्धों में निरन्तर पराजय, मित्र राष्ट्रों को हरजाने की रकम आदि देने में जर्मनी की आर्थिक स्थिति अत्यधिक शोचनीय हो गयी थी। जहाँ पर बिस्मार्क युग की राजकीय पूँजी ने उद्योगों का विकास किया था। सम्पूर्ण देश में बेकारी, भुखमरी आदि का साम्राज्य था। जिससे चारो ओर निराशा व्याप्त थी। कृषकों और श्रमिकों का जीवन तो और भी गिरा हुआ था। मित्र राष्ट्रों को युद्ध की हर्जाने की रकमें भी दी जाया करती थी। डैरी और जारमैन के कथनानुसार– ''जर्मनी में हर जगह आर्थिक अव्यवस्था जो कि बुरी तरह अस्त–व्यस्त हो चुकी थी की निन्दा होती थी। जगह–जगह गणतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग कमजोर पड़ गये थे। तथा जनता नई व्यवस्था नये नेताओं के पक्ष में थी।''

नजीवाद का उदय इसी समय हुआ। इसके संस्थापक हिटलर ने श्रमिकों एवं कृषकों की दशा में सुधार करने का वायदा किया। उसने यह भी घोषित किया कि स्थिति में परिवर्तन के बल नाजीवाद के उत्थान द्वारा ही सम्भव है। अन्यथा जर्मनी कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है। श्रमिकों एवं किसानों को अत्यधिक सुविधायें दी जायेगी। फलतः स्वीकार कर ली। दल की उन्नति नित्य प्रति होती गयी।

(3) साम्यवाद का प्रकोप – मार्क्सवाद का प्रचार निरन्तर अबाध गति से चल रहा था। ऐसा प्रकट होता है कि कुछ दिनों में सम्पूर्ण विश्व साम्यवाद को स्वीकार कर लेगा। इससे जनता के भावों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे। जनता भी साम्यवादी सरकार को स्थापित करने के रंगीन स्वप्न देखेन लगी। गणतंत्रवादी सरकार साम्यवाद की घोर विरोधी थी। वह साम्यवादियों के प्रति कठोर नीति का पालन करने में जरा भी नहीं हिचकिचाती थी। गणतन्त्रवादी साम्यवादियों का दमन न कर सके।

नाजीवाद ने साम्यवादियों के प्रकोप को वहन किया और उसका पूर्ण रूप से दमन किया। उसने साम्यवादियों की बदनामी करने में भी कुछ कसर न उठा रखी। उसने कूटनीति से काम लिया। सत्ता ग्रहण करने के पूर्व संसद भवन में उसने स्वयं आग लगाकर साम्वादियों के विरुद्ध प्रचार किया। जनता जहाँ साम्यवादियों के गर्व के साथ देखती थी। तथा उनके द्वारा उन्नति की आशा करने लग गयी थी। वहाँ उसके विचारों में परिवर्तन हो गया। वह साम्यवादियों को क्रान्ति का विरोधी समझने लगी फलतः नाजीवाद ने अपनी स्थिति को दृढ़ किया। हिटलर ने साम्यवाद का दमन कर दिया।

(4) यहूदियों की समस्या का अन्त –जर्मनी में विभिन्न समस्याओं के अतिरिक्त यहूदियों की समस्या भी थी, जो कि जर्मनी की उन्नति एवं नाजीवाद की उन्नति में बाधक हो सकती थी। यहूदी वर्ग जर्मनी में अत्याधिक सम्पत्तिशाली वर्ग था, जो अत्यधिक कठोरता से ब्याज लिया करता था।

यहूदियों के हांथ में विभिन्न बड़े–बड़े उद्योग एवं व्यापार थे। जर्मनी की जनता में यह विचारधारा फैली थी कि यहूदी जर्मन विरोधी गुटों से मिले हुये हैं। वे जनता को इस स्थित में अत्यधिक तंग किया करते थे।

हिटलर ने जनता की इस भावना का अध्ययन किया और अवसर से लाभ उठाया। यहूदी विरोधी जनता नाजीदल के पक्ष में हो गयी। और निश्चित हो गया कि वे अब उन्नति एवं विजयों में बाधा नहीं बनेगे।

(5) विरोधियों में मतभेद –नाजीदल के विरोधी दलों में एकता का पूर्ण अभाव था। वे नाजीवाद को सम्बद्ध करने के लिए प्रयत्न अवश्य करते थे। लेकिन उनके प्रयत्नों के बीच प्रारूप अलग–अलग होते हैं। वे भिन्न–भिन्न मार्गों को अपनाते थे। जिससे कभी भी नाजीवाद को हानि न पहुँचे यदि वे सम्मिलित होकर विरोध करते तो सम्भव था कि वे अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर लेते। यदि शोसल डैमोक्रेट इस ओर प्रयत्न करते और जर्मनी की जनता को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते तो कदाचित सफलता प्राप्त कर पाते किन्तु उन्होंने इस ओर ध्यान नहीं दिया।

(6) जनता का सहयोग – जनता का शासन के क्षेत्र में अधिक अधिकार होता है। जनता जिस पक्ष का समर्थन कर देती है। वह सफल हो जाता है जर्मनी की जनता संसदीय व्यवस्था में असन्तुष्ट थी। और मित्र राष्ट्रों की हर बात स्वीकार कर लेती है। न जाने कितने प्रदेशों को स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी। जिनके साथ औद्योगिक कारखाने एवं भू–भाग भी जर्मनी के से चले गये। जनता इस सरकार को समाप्त करना चाहती थी। हिटलर भी संसदीय व्यवस्था का विरोधी था, उसने अपने विचार जनता के सम्मुख रखे, जनता ने उसका स्वागत किया।

''जर्मनी की पराजय का कारण कुछ नेताओं की कायरता है अन्यथा जर्मन सेना में अब भी इतनी शक्ति है कि वह अपने शत्रुओं को नीचा दिखा सके परन्तु उसके नेता साहस खो बैठे हैं।''

(7) सैनिकवाद – नाजीवाद के समस्त विचार सैनिकवाद पर आधारित थे जर्मन की जनता सैनिकवाद में विश्वास करती थी। शान्तिपूर्ण ढंग से शासन होनेमें उनको हार्दिक सन्तोष न होता था। उदार गणतंत्रवादी सरकार उदार नीतियां का पालन करती थी। जनता ऐसे साम्राज्यवादी की स्थापना करना चाहती थी जिसकी शक्ति में यूरोप के भयभीत हो जाये विस्मार्क की सफलता भी सैनिकवाद में निहित थी।

(8) सदस्यों का संगठन – नाजीवाद के सदस्यों का संगठन अत्यधिक था। उन्होंने श्येच्छा से इसे स्वीकार किया था। उनके सिद्धांत इन सिद्धांतों से मेल कर जाया करते थे। उनके संगठन में इतनी शक्ति थी कि ये अपने नेता के वाक्यों को मृत्यु पर्यन्त अपनाते थे। स्वयं सेवकों की दूसरा वर्ग जो काली कमीज पहनता था, जिस पर मानव की खोपड़ी का चित्र बना रहता था। इससे उनको अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुयी और नाजीदल प्रभावशाली हो गया।

(9) हिटलर का व्यक्तित्व –दल के संस्थापक के व्यक्तित्व पर भी दल की उन्नति निर्भर थी। हिटलर का जीवन कठिनाईयों और करुण कहानियों से भरा हुआ था। लेकिन अपनी कठिनाईयों पर विजय प्राप्त करके विश्व के भावी नागरिकों के सम्मुख यह आदर्श रखा कि लगन एवं कर्म से कठिन से कठिन कार्य भी सफल हो जाते हैं।

उसने उन्नति करके अपने मार्ग को स्वयं बनाया। उसमें भाषण देने की अपूर्व क्षमता थी। उसके भाषणों में ऐसा जादू होता था कि जनता खिंचती चली आती थी।

अधिकांश देशों में लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए अनेक क्रांतियाँ एवं आन्दोलन हुये। सर्वप्रथम इंग्लैण्ड व फ्रांस में लोकतंत्र एवं उदारयाद का विकास हुआ। इस युग में उदारवाद के विकास की प्रक्रिया के दौरान हुये प्रमुख सामाजिक आन्दोलन निम्नलिखित माँगों पर आधारित थे–

1. मताधिकार का विस्तार एवं शासन में जनता की भागीदारी।

2. शासन में मध्यम वर्ग की भूमिका।

3. शासन में मजदूरों एवं कृषकों की भागीदारी।

4. स्त्रियों को मताधिकार एवं शासन में उनकी भागीदारी।

इंग्लैण्ड में सन् 1918 में स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया गया, किन्तु यह केवल उन्हीं तक सीमित था, जिनकी आयु 30 वर्ष या अधिक थी। यद्यपि स्त्रियों को मताधिकार से प्रसन्नता हुयी, किन्तु वे 30 वर्ष की आयु सम्बन्धी आर्हता से अप्रसन्न थी। अतः उन्होंने अपना आन्दोलन जारी रखा। अन्ततः 1928 ई. में संसद ने यह निर्णय किया कि पुरुषों के समान ही स्त्रियों को भी मताधिकार प्रदान किया जाये।

इस प्रकार स्त्रियों व पुरुषों को समान रूप से मताधिकार प्रदान किया गया। सामाजिक स्थिति उसी प्रकार की थी। जिस प्रकार की 1789 ई. में फ्रांस की राज्य क्रान्ति के समय फ्रान्स की थी। रूसी समाज दो वर्गों में विभक्त था। विशेषाधिकार युक्त वर्ग एवं विशेषाधिकार विहीन वर्ग। परिणामस्वरूप वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी। रूस के कृषकों के समान थी। रूस के कृषक भी असन्तुष्ट थे। तथा आन्दोलन के लिए तत्पर थे। रूसी श्रमिकों की दशा भी कृषकों के समान थी। मध्यम वर्ग द्वारा भी निरन्तर प्रजातंत्रीय शासन की मांग की जा रही थी।

इन परिस्थितियों में 1917 ई. में रूसी क्रान्ति प्रारम्भ हुयी। जिसके परिणाम स्वरूप सत्ता उदार तत्वों के हांथों में आ गयी। उदारवादी नेता प्रिंस ल्वोव के नेतृत्व में सरकार अस्तित्व में आयी। इस उदारवादी मंत्रिमण्डल ने सत्ता सम्भालते ही अनेक उदारवादी घोषणायें की।

इटली एवं जर्मनी का एकीकरण तथा इस काल में फ्रांस व अमेरिका में हुये सकारात्मक परिवर्तनों पर भी उदारवादी विचारों की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है।

अध्याय–9

द्वितीय विश्व युद्ध की उत्पत्ति, प्रकृति परिणाम

द्वितीय विश्व युद्ध की विशेषतायें या प्रकृति (Characteristics of Natire of the Second World war)

प्रकार वास्वत में अपनी कुछ विशेषताओं के कारण द्वितीय विश्वयुद्ध अपने का प्रथम विश्वयुद्ध था। इस युद्ध की कुछ विशेषतायें निम्न प्रकार थीं–

1. वस्तुतः प्रथम विश्वयुद्ध (Infact First World War)– वास्तव में 1939–45 का II Wordl War वास्तविक अर्थों में प्रथम विश्वयुद्ध था क्योंकि 1914–18 के युद्ध में एशिया महाद्वीप में कोई युद्ध नहीं हुआ था और अनेक देश ने इसमें कोई भाग नहीं लिया था। जबकि 1939–45 के युद्ध में इटली, जर्मनी, जापान, फ्रांस, रूस तथा इंग्लैण्ड आदि देश तो आरम्भ से संलग्न थे ही यूरोप भी पूर्णरूप से युद्ध की लपटों में झुलस रहा था। ब्रिटेन ने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य की शक्ति से युद्ध में भाग लिया था। शीघ्र ही यह युद्ध यूरोपीय सीमा को पार करके अफ्रीका तथा एशिया में पहुँच गया और जापान तथा अमेरिका के युद्ध में प्रवेश करते ही युद्ध विश्व के कोने–कोने में फैल गया था। यूरोप में स्विट्जरलैण्ड तथा आयरलैण्ड, एशिया में टर्की तथा अफगानिस्तान तथा कुछ अन्य छोटे–मोटे देश ही भाग्यशाली देश थे, जो इस युद्ध की भयानकता से बच रहे थे।

2. अपने आप में भिन्न (Unique War) – यह युद्ध अपने आपमें ही भिन्न था। पहले लोग खन्दको में ही पड़े–पड़े कभी–कभी बन्दूक चला देते थे परन्तु अब यह बात नहीं थी। इस युद्ध का उद्देश्य शत्रु को अचानक तथा आंधी की गति से घेर कर नष्ट करना था। फ्रांस ने अपने संरक्षण के लिये में जीनी लाइन (डंहपदवज स्पदम) पर भरोसा किया। जर्मनी की तो विद्युत गति थी। यह विद्युत गति ही थी, जिसने उसे पोलैण्ड को 4 सप्ताह में, हालैण्ड को 4दिन औरबेल्जियम को 15 दिन के अन्दर ही जीतने योग्य बना दिया था। अल्पकाल में ही फ्रांस को जनरल रोमेल ने तीव्र गति से पैर फैलानाआरम्भ कर दिया था।

3. कौशलपूर्ण युद्ध (Skilled War) – इसकी कौशल नीति भी एक विश्वव्यापी कौशल नीति थी। क्योंकि यह युद्ध सारे संसार भर में लड़ा गया। यह विश्वव्यापी युद्ध नीति रुजवेल्ट चर्चिल तथा स्टालिन ने स्वयं बनाई।

4. आणविक युद्ध (Atomic War)– 1939–1945 का II World War इतिहास के प्रथम आणविक (Atomic) युद्ध था। इस युद्ध के पूर्व किसी भी युद्ध में किसी भी देश ने अणुबम का प्रयोग नहीं किया था। 6 अगस्त 1945 को अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा पर प्रथम एटम बम गिराया और अपने निवास स्थानों तथा निवासियों सहित सम्पूर्ण नगर ही नष्ट हो गया। 9 अगस्त 1945 को अमेरिका ने नागासाकी नगर पर दूसरे एटम बम का प्रयोग किया और उसका भी वही परिणाम हुआ तथा पृथ्वी पर उसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया। इस प्रकार इस युद्ध में महान विनाशकारी अस्त्र बम का प्रयोग किया गया।

5. एक पूर्ण युद्ध (Acomplete War) —वास्तव में II World War एक सम्पूर्ण युद्ध था। जल, थल तथा नभ तीनों ही स्थानों पर युद्ध चलता रहा। केवल हिन्द महासागर अथवा अटलांटिक महासागर से ही सागरीय युद्ध नहीं हो रहा था, वरन् भूमध्य सागर, ध्रुव सागर जैसे छोटे–छोटे सागरों से भी युद्ध हो रहा था। आकाश में भी इससे पूर्व इतना भयानक युद्ध कभी नहीं हुआ था। ग्राम, नगर, सैनिक असैनिक, पर्वतीय तथा मैदानी प्रत्येक स्थान पर विनाशकारी युद्ध का नग्न नृत्य हो रहा था।

6. विचारधारा का युद्ध (War of Ideologies) – यह एक विचारधारा का युद्ध था। यह एक प्रकार का धर्म युद्ध था। ष्रूजवेल्टष ने कहा था कि यह युद्ध 4 स्वतंत्राओं का युद्ध है– निर्धनता और भय से आजादी और धार्मिक तथा राजनीतिक आजादी 1 अगस्त 1941 के एटलांटिक चार्टर में यह घोषणा कर दी गयी कि ष्हम सब बुराईयों के विरुद्ध लड़ रहे हैं।ष चूंकि यह विचारधाराओं का युद्ध था इसलिये शायद विश्व के सभी देशों में ब्रिटेन में भी पच मांगी थे। कुछलोग ऐसे थे जो हिटलर दर्शन के साथ थे। हिटलर ने इसका लाभ उठाना चाहा, उसने प्रत्येक ऐसे देश को मदद देने का वादा किया जो मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध कार्य करे।

7. प्रचार का युद्ध (War of Propaganda)– इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये न केवल टैंकों, बमों तथा तोपों का ही प्रयोग किया गया, वरन् समाचार पत्रों तथा वायरलेस का भी प्रयोग किया गया। अपनी श्रेष्ठता का प्रर्दशन करने के लिए दोनों पक्ष प्रचार का अधिक से अधिक आश्रय ले रहे थे। जनता को प्रेरित करने तथा मानव हित की अपील करने एवं शत्रु के विरुद्ध भ्रामक प्रचार करने के लिए प्रचार साधनों का प्रयोग किया गया। रेडियो ने भी इस कार्य में काफी सहायता प्रदान की। जर्मनी में गोयबल्स और इंग्लैण्ड में बी०बी०सी० ने इसमें अपनी अहम् भूमिका निभायी।

8. कच्चे सामान और उद्योगों की आवृत्ति (Invalvement) – अनुभव ने यह बतलाया कि स्थल सैनिक, जल सैनिक, वायु सैनिक फैक्टरी श्रमिकों पर निर्भर थे और ये श्रमिक कच्चे माल तथा खाद्य आपूर्ति पर निर्भर थे। अतः इस युद्ध की लपेट में समस्त कच्चा माल और सभी उद्योग–धन्धे आ गये थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रमुख कारण

द्वितीय विश्व युद्ध प्रथम युद्ध से भी अधिक भयंकर सिद्ध हुआ। यह युद्ध प्रथम विश्व युद्ध के ठीक 21 वर्ष पश्चात् प्रारम्भ हुआ तथा उससे कहीं अधिक व्यापक प्रभाव डालने वाला तथा विनाशकारी था। कैटेलबी के मत में, ''यह विश्व युद्ध प्रथम विश्व युद्ध से अधिक भयंकर व्यापक तथा विनाशकारी था। इसमें विश्व की विभिन्न जातियों ने भाग लिया और यह स्थल, जल तथा आकाश तीनों स्थानों पर लड़ा गया।" सावधानी से देखा जाय तो द्वितीय विश्व युद्ध के निम्नलिखित कारण इंगित होंगे–

1. वसार्य सन्धि के दोष – इस सन्धि द्वारा पराजित राष्ट्रों को अपमानित करके अन्यायपूर्ण तरीकों से दबाया गया। उनकी प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला दिया गया तथा आर्थिक रूप से पंगु बना दिया गया। ऐसी दोषपूर्ण सन्धि सेछुटकारा पाने के लिए जर्मनी ने बदले की भावना से द्वितीय विश्व युद्ध शुरू कर दिया। जैसा कि राजनीतिज्ञों ने भी कहा था, ''वर्साय की सन्धि में द्वितीय विश्वयुद्ध के बीज छिपे हैं।''

इस सन्धि द्वारा मित्र राष्ट्रों ने सबसे अधिक अपमान जर्मनी का किया था। पेरिस के शान्ति सम्मेलन में जर्मनी को इस अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया गया तथा उसके साम्राज्य की सीमाओं को भी अत्यधिक संकुचित कर दिया गया। इस विषय में सभी विद्वानों का मत है कि वर्साय की अपमानजनक सन्धि ने ही हिटलर को बदला लेने के लिए प्रेरित किया और अवसर मिलते ही उसने उसे रद्दी की टोकरी में फेंक दिया।

2. जर्मनी में उग्रराष्ट्रवाद की भावना – प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी की पराजय ने देश में उग्रराष्ट्रवाद की भावना को जन्म दिया। राष्ट्रीय स्वाभिमान, राष्ट्रवाद, प्रजातीयता ने जर्मनी में नये संगठन नाजीवाद को जन्म दिया। जर्मनी शक्तिशाली बन गया और फ्रांस में लगे राइनलैण्ड पर अपना अधिकार कर लिया। यह कार्य आक्रामक था।

3. साम्राज्यवादी भावना का विकास – प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् मित्रराष्ट्रों ने अपनी साम्राज्यवादी भावना से प्रेरित होकर यूरोप में नवीन व्यवस्था की स्थापना की थी। उनके द्वारा स्थापित व्यवस्था भविष्य में विश्व में शान्ति करने में सफल न हो सकी। वास्तव में उनकी व्यवस्था ने युद्धों का अन्त करने के स्थान पर नवीन युद्धों को जन्म दिया। कुछ समय पश्चात साम्राज्यवादी भावन से प्रेरित होकर इटली ने एबीसीनिया पर और जापान ने मंयूरिया पर अधिकार कर लिया। इनकी देखा–देखी अन्य यूरोपीय राज्य भी अपनी साम्राज्यवादी भावना से प्रेरित होकर अपनी शक्ति का विस्तार एवं सुरक्षा का प्रबन्ध करने लगे। साम्राज्यवादी भावना का विकास अन्त में द्वितीय विश्व युद्ध का कारण बना।

4. अधिनायकों का उदय – वर्साय की सन्धि से असन्तुष्ट देशों में अधिनायकों का उदय हुआ। जर्मनी में हिटलर और इटली में मुसोलिनी का उदय हुआ इटलीवासियों ने यह अनुभव किया कि वर्साय की सन्धि में मित्रराष्ट्रों ने उसकेसाथ समानता का व्यवहार नहीं किया। अतः मुसोलिनी ने मित्र राष्ट्रों से बदला कर लेने का निश्चय किया। स्पेन में जनरल फ्रेन्को ने गणतन्त्र का विनाश तानाशाह बन साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण किया। जापान भी इसमें पीछे नहीं रहा।

5. दो विचारकों का संघर्ष – फ्रांस की राज्य क्रांति (1789) ने स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व की भावना की एक नयी विचारधारा यूरोप में प्रसारित की थी। यूरोप के बहुत से देशों ने इस विचारधारा को ग्रहण किया था। बीसवीं शताब्दी में सर्वाधिकारवादी नाम की दूसरी विचारधारा यूरोप में पनपने लगी। इन दोनों विचारधाओं में संघर्ष होना एक स्वाभाविक बात थी। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान साम्यवादियों ने खूनी क्रान्ति करके रूस की शासन सत्ता पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इटली में मुसोलिनी ने और जर्मनी में हिटलर ने अपनी तानाशाही स्थापित कर ली। इनका अनुकरण करके स्पेन, आस्ट्रिया और तुर्की भी तानाशाही के शिकार हो गये। इसके बाद यूरोप में तानाशाही के विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई, जिसके परिणामस्वरूप दूसरा विश्व युद्ध हुआ।

6. इंग्लैण्ड एवं फ्रांस की तृष्टिकरण की नीति एवं पारस्परिक मतभेद – इंग्लैण्ड और फ्रांस काफी समय तक हिटलर और मुसोलिनी की प्रादेशिक माँगों को पूरा करते रहे, क्योंकि उनका विचार था कि ऐसा करने पर भावी युद्ध रुक जाएगा, परन्तु इससे तानाशाही और अधिनायकवाद और बढ़ गया।

फ्रांस और इंग्लैण्ड की जर्मनी विषयक नीति में आपस में मतभेद था। फ्रांस जर्मनी को शक्तिहीन बना देना चाहता था, परन्तु इंग्लैण्ड न तो फ्रांस को शक्तिशाली देखना चाहता था और न जर्मनी को कुचलना चाहता था। अतः फ्रांस और इंग्लैण्ड अपनी अलग–अलग नीतियों के कारण जर्मनी के विरुद्ध कोई एक रणनीति न अपना सके।

7. इटली और जापान में उग्रराष्ट्रवादिता एवं सैनिकवाद – इटली और जापान में उग्रराष्ट्रवादिता की भावना बढ़ी और फासिस्ट दल का संगठन हुआ। इटली के मुसोलिनी इस संगठन के जन्मदाता थे। जापान ने भी अपनी सैनिक शक्तिबढ़ा ली और चीन के मंचूरिया प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इटली ने एबीसीनिया पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। अतः सभी देश अपनी–अपनी सीमा की सुरक्षा के लिए चिन्तित हो उठे और युद्ध का सा वातावरण सम्पूर्ण विश्व में बन गया।

8. राष्ट्रीय भावना की अवहेलना – पेरिस के शक्ति सम्मेलन में राष्ट्रों ने विभिन्न राज्यों की जनता की राष्ट्रीय भावनाओं की पूर्ण अवहेलना की। उन्होंने विभिन्न प्रकार की सन्धियों द्वारा यूरोप के मानचित्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया था। उन्होंने यूरोप में कई ऐसे नवीन राज्य स्थापित किये जिनकी भाषा, रीति–रिवाजों आदि में पर्याप्त भिन्नता थी। उनके प्रदेशों में निवास करने वाली अधिकांश जनता जर्मन थी। इन प्रदेशों को यूरोपीय राज्यों में मिलाकरं मित्रराष्ट्रों ने एक भयंकर भूल की। इसके फलस्वरूप यूरोपीय राज्यों में राष्ट्रीय भावनाओं का जागरण हुआ और उन्होंने अपनी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित करके अपमान का बदला लेने का निश्चय किया।

9. निःशस्त्रीकरण की विफलता –मित्रराष्ट्रों ने वर्साय की सन्धि द्वारा जर्मनी का निःशस्त्रीकरण करके उसकी सैनिक शक्ति को बहुत कम कर दिया था। उसके जंगी जहाजों, गोला–बारूद तथा पनडुब्बियों आदि पर मित्रराष्ट्रों ने अधिकार कर लिया था, लेकिन मित्र राष्ट्र अपना निःशस्त्रीकरण सदैव टालते रहे। फ्रांस जर्मनी के भय से अपने शस्त्रों में कमी नहीं करना चाहता था। इंग्लैण्ड अपनी नौसैनिक शक्ति कम करने के पक्ष में नहीं था और सन् 1934 में हिटलर ने जर्मनी का शस्त्रीकरण करना आरम्भ कर दिया उसकी देखा–देखी अन्य यूरोपीय देश भी शस्त्रीकरण की दौड़ में भाग लेने लगे। शस्त्रीकरण की यह दौड़ वस्तुतः भावी विनाश की तैयारी सिद्ध हुई।

10. राष्ट्रसंघ की दुर्बलता – राष्ट्रसंघ की स्थापना विश्व में शान्ति स्थापित रखने के उद्देश्य से की गई थी, परन्तु विभिन्न राष्ट्रों की स्वार्थप्रियता के कारण राष्ट्रसंघ अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रहा।

राष्ट्रसंघ की दुर्बलता का एक प्रमुख कारण अमेरिका का इससे पृथक रहना था। शक्ति के अभाव में राष्ट्रसंघ विभिन्न राष्ट्रों की आक्रामक कार्यवाहियों को रोकने में सफल न हो सका। मंचूरिया पर जापान का आक्रमण (1931). एबीसीनिया पर इटली का आक्रमण (1936) और आस्ट्रिया पर जर्मनी का अधिकार (1938) आदि बातों ने राष्ट्रसंघ की दुर्बलता को प्रकट कर दिया। राष्ट्रसंघ की असफलता भी अन्त में द्वितीय युद्ध के विस्फोट का कारण बनी।

11. तात्कालिक कारण –जर्मनी का पोलैण्ड पर आक्रमण 1 सितम्बर, 1939 ई. को जर्मन सेनाओं ने पोलैण्ड पर भीषण आक्रमण कर दिया। पोलैण्ड की सेना जर्मनी की अपार शक्ति

का सामना करने में सफल न हो सकी। उसने इंग्लैण्ड और फ्रांस से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु जर्मन सेनाओं का राइलेशिया पर अधिकार हो जाने के कारण उसे इनकी सहायता न मिल सकी। धीरे–धीरे जर्मन सेनाओं ने वासी की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर दिया। इसी समय रूस ने भी पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। अन्त में 28 सितम्बर को पोलैण्ड ने जर्मनी की अधीनता स्वीकार कर ली। रूस और जर्मनी ने परस्पर एक सन्धि करके पोलैण्ड का विभाजन कर लिया।

इसके पश्चात् हिटलर ने इंग्लैण्ड तथा फ्रांस से युद्ध का अन्त करने की अपील की। बेल्जियम तथा हॉलैण्ड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध जारी रखा। इधर रूस ने पोलैण्डपर अधिकार करके बाल्टिक राज्यों पर आक्रमण कर दिया और शीघ्र ही उसने इन पर अधिकार स्थापित कर लिया।

द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम

द्वितीय विश्वयुद्ध सन् 1939 में समाप्त हुआ। यह युद्ध युरोप मे ही नहीं, एसिया में भी लड़ा गया। इसमें एक ओर तो आक्रमणकारी तानाशाही देश जर्मनी, इटली व जापान थे, जो विश्व–विजय का स्वप्न देखते थे और दूसरी तरफ अमेरिका, ब्रिटेन, रूस आदि सभी राष्ट्र थे। इस युद्ध के परिणाम प्रथम विश्व युद्ध के परिणामों से भी भयंकर थे। इस युद्ध के परिणामों को निम्नलिखित शीर्षकों में वर्णित किया जा सकता है–

1. भयंकर विनाश और नर संहार– एक अनुमान के अनुसार इस युद्ध में 5 करोड़ से अधिक लोग मारे गये। इसमें लगभग 2 करोड़ 20 लाख से अधिक नागरिक सम्मिलित थे। लगभग एक करोड़ बीस लाख लोगों को जर्मनी व इटली के यन्त्रणा शिविरों में अपनी जान गँवानी पड़ी। इसके अतिरिक्त करोड़ों लोग अनाथ तथा बेघर हो गये।

2. आर्थिक परिणाम– यूरोप के अनेक राष्ट्रों ने अपने समस्त साधनों को युद्ध सामग्री के निर्माण में लगा दिया था। उनके ये साधन भी बुरी तरह से नष्ट हो गये। उनकी अर्थव्यवस्था चौपट हो गयी।

इस युद्ध में लगभग 13 खरब, 84 अरब, 10 करोड़ डॉलर व्यय हुआ। इससे मुनाफाखोरी, चोरबाजारी तथा बेरोजगारी बढ़ी।

3. सामाजिक परिणाम रू द्वितीय विश्व युद्ध के सामाजिक परिणाम निम्नलिखित निकले–

(1) विश्व में मनुष्यों की संख्या कम हो जाने से स्त्रियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करने लगीं। स्त्रियों के सम्मान में वृद्धि हुई।

(2) अनेक देशों में अत्यधिक महँगाई, मुनाफाखोरी व चोरबाजारी के कारण अनेक असामाजिक तत्वों को प्रोत्साहन मिला। यूरोप के देशों में अनेक बच्चे अनाथ हो गये।

(3) जापान में अणुबम के प्रभाव के कारण दीर्घ काल तथा विकृत और विकलांग बच्चे पैदा होते रहे।

(4) सामाजिक मान्यताएँ और मापदण्ड शिथिल पड़ गये।

(5) शिक्षा, कला व साहित्य का विकास रुक गया तथापि विज्ञान की उन्नति जारी रही।

4. जनतंत्र की विजय – यह युद्ध दो विचारधाराओं के संघर्ष के परिणामस्वरूप था। ये विचारधाराएँ थीं– जनतंत्रवाद तथा तानाशाही। इस संघर्ष में जनतंत्र की विजय हुई और तानाशाही की पराजय।

5. ब्रिटेन में साम्राज्य का विघटन –द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् ब्रिटेन के विशाल साम्राज्य का विघटन होना प्रारम्भ हो गया। उसे भारतवर्ष, श्रीलंका तथा बर्मा आदि देशों को स्वतंत्र करना पड़ा। फारस में ब्रिटेन के जो विशेषाधिकार थे, उनका अन्त हो गया। फिलिस्तीन भी अंग्रेजी संरक्षण से मुक्त हो गया। स्वेज नहर और सूडान से ब्रिटिश विशेषाधिकारों के अन्त के लिए आन्दोलन चलने लगे। इसी प्रकार अफ्रीका के देशों में भी अपनी–अपनी स्वाधीनता के लिए आन्दोलन चलने लगे।

6. अन्य देशों के साम्राज्य का अन्त – ब्रिटेन के साम्राज्य के साथ अन्य पश्चिमी देशों के साम्राज्य का भी विघटन होना प्रारम्भ हो गया। इण्डोनेशिया डच साम्राज्य से मुक्त हो गया। सीरिया और लेबनान फ्रांस के संरक्षण से मुक्त हो गये। उसने हिन्द– चीन (वियतनाम) को भी स्वायत्त शासन देने का वचन दिया। एबीसीनिया भी इटली के शासन से मुक्त हो गया। लीबिया को भी स्वतंत्रता मिल गई। संयुक्त राज्य अमेरिका ने फिलीपीन्स को स्वतंत्रता दे दी। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् पश्चिमी देशों के साम्राज्य का महत्व नष्ट होने लगा।

7. जर्मनी का विभाजन – इस युद्ध में जर्मनी के पराजित होने पर मित्र राष्ट्रों द्वारा उसे दो भागों में विभाजित कर दिया– पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी। पूर्वी जर्मनी पर रूस का अधिकार हो गया और पश्चिमी जर्मनी इंग्लैण्ड, फ्रांस व अमेरिका के प्रभुत्व में रहा।

8. इटली से फासिस्ट शासन का अन्त – इटली में फासिस्टवाद (Fascism) का अन्त हो गया। वहाँ प्रजातंत्र की स्थापना हुई तथा उसकी सैनिक शक्ति कमजोर कर दी गयी और उसे युद्ध के हरजाने के रूप में अत्यधिक धनराशि देनी पड़ी। इटली के अफ्रीकी उपनिवेश से उसके हथियार छीन लिये गये।

9. हथियारों की दौड़ – इस युद्ध में अमेरिका ने जापान के विरुद्ध परमाणु हथियारों का प्रयोग किया था। अतः इस युद्ध के बाद सभी देशों में परमाणुहथियारों में दक्षता प्राप्त करने की दौड़ शुरू हो गयी। यह द्वितीय विश्व युद्ध का सबसे ज्यादा हानिकारक परिणाम था। इस दौड़ के फलस्वरूप रूस, इंग्लैण्ड, फ्रांस, चीन आदि देशों ने भी परमाणु बम बना लिए और अब इतने भयंकर परमाणु बम बन चुके हैं कि यदि युद्ध छिड़ा तो न मानवता बचेगी न मानव।

10. साम्यवाद का विस्तार –इस युद्ध के बाद यूरोप में रूस का प्रभाव बढ़ा और बुल्गारिया, हंगरी, रूमानिया, यूगोस्लाविया, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया और पूर्वी जर्मनी में साम्यवादी सरकारें बन गयीं।

11. अमेरिका की मानवृद्धि – द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति अमेरिका द्वारा जापान पर परमाणु बम डालने से हुई। इससे अमेरिका को द्वितीय विश्व युद्ध में विजय का श्रेय मिल गया और संसार में वह एक शक्तिशाली देश मे रूप में उभरा।

12. विश्व का दो गुटों में विभाजन – यूरोप दो गुटों में बँट गया। कुछ पश्चिमी यूरोपीय देश अमेरिका के गुट में चले गये और पूर्वी यूरोप के देश रूस के गुट में आ गये। संसार के अनेक देश भी इन गुटों में सम्मिलित होने लगे।

13. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना – प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जिस प्रकार विश्व को भावी युद्धों से बचाने के लिए राष्ट्र संघ की स्थापना हुई उसी प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् पुनः मानव जाति को युद्ध की विभीषिकाओं से बचाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ नामक संस्था की स्थापना की गयी। यह संस्था आज भी विश्व शान्ति की स्थापना में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

अध्याय 10

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन और उपनिवेशवाद की समाप्ति

18वीं सदी के बाद से दक्षिण–पूर्व एशिया के विभिन्न देश पाश्चात्य जगत के अत्याधिक निकट आते गये और वहाँ पाश्चात्य देशों की सत्ता स्थापित हो गयी। केवल सियाम या थाईलैण्ड ही ऐसा देश बचा जहाँ कि किसी विदेशी शक्ति ने अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित नहीं की। शेष सभी देश परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ गये। शनैः शनैः उन देशों ने परतन्त्रता की बेड़ियों को काटने का बीड़ा उठाया और द्वितीय महायुद्ध के बाद दक्षिण–पूर्व एशिया के अनेक देश स्वतंत्र हो गये। एशिया के आधुनिक इतिहास में दक्षिण–पूर्व एशिया के विविध देशों का राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिये संघर्ष ही अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अतः हम यहाँ पर विभिन्न देशों के स्वतंत्रता संग्रामों का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

इण्डोचायना या हिन्द चीन में राष्ट्रवादी आन्दोलन

फ्रांस का प्रभाव : 1863 में इण्डोनेशिया या हिन्द चीन में फ्रांस के प्रभाव कासूत्रपात हुआ और उसने अपनी साम्राज्यवादी नीति को जारी रखा तथा 5 वर्षों में कम्बोडिया भी उसके अधीन आ गया। 1883 तक अनम का राजा फ्रांस की आधीनता स्वीकार कर लेने के लिये विवश हो गया। 1893 में लाओस पर भी फ्रांस का आधिपत्य हो गया। इस प्रकार 19वीं सदी के पूर्व ही समस्त इण्डो चायना फ्रांस की अधीनता स्वीकार कर चुका था और वह उसी प्रकार फ्रांस के आधीन था जिस प्रकार भारत ब्रिटेन के।

स्वतंत्रता के प्रथम प्रयास : फ्रांस की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिये इण्डो–चायना में अनेक स्वतंत्रता आन्दोलन हुए। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व अनेक दल स्वतंत्रता के लिये प्रयत्नशील थे। इन दलों में (1) फाम – युइन्दो दल (2) क्रान्तिकारी दल (3) आतंकवादी दल प्रमुख थे पहला नरम दल था। दूसरा दल अनम के नवयुवक देशभक्तों का था। जिसमें 1928 तक कम्युनिष्ट लोग भीशामिल हो चुके थे। तीसरा दल इण्डोचायना से बाहर कैण्टन को अपना केन्द्र स्थल बनाकर इण्डोचायना की स्वतंत्रता के लिये सक्रिय था।

द्वितीय महायुद्ध और स्वतंत्रता आन्दोलन –द्वितीय महायुद्ध के समय में समस्त दल अपने–अपने ढंग से इण्डोचायना की राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता के लिये कार्य कर रहे थे। क्रान्तिकारी दल के लोग, जिसमें साम्यवादी भी सम्मिलित थे, द्वितीय महायुद्ध को राष्ट्रीय स्वाधीनता के हेतु एक स्वर्णिम अवसर मानते थे। और इसलिये उन्होंने देकू (इण्डोचायना) का गवर्नर जनरल) का छिपे–छिपे प्रतिरोध प्रारम्भ किया। उन्होंने कुछ ऐसी समितियाँ स्थापित की जो फ्रेंच शासन और जापान के सैनिक प्रभाव को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील थीं। इन देश भक्तों ने गुरिल्ला युद्ध नीति को अपनाकर फ्रांस एवं जापान के अफसरों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। जिससे विदेशी सरकार के लिये करना दूभर हो गया। गुरिल्ला युद्ध करके इण्डोचायना को स्वतंत्र कराने के लिये प्रयत्नशील रहे।

लाओस व कम्बोडिया में राष्ट्रवादी आन्दोलन – द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व लाओस पर फ्रांस का अधिकार था। विश्वयुद्ध में जापान ने उस पर अपना अधिकार कर लिया। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् जब वहाँ पुनः फ्रांस का शासन स्थापित हुआ तो साम्यवादियों ने उसका विरोध किया और उत्तरी लाओस ने अपने को असंगठित कर दक्षिण लाओस की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर दिया। 1954 में उन्होंने फ्रांसीसी सेना को पराजित कर लाओस के 2 उत्तरी प्रान्तों पर अधिकार कर लिया। 1954 के जेनेवा समझौते से इस संघर्ष का अन्त हुआ, परन्तु उत्तरी लाओस के 2 प्रान्त साम्यवादियों के अधिकार में रहे। जेनेवा समझौते के अनुसार 8 लाओस को स्वतंत्र कर उसे तटस्थ राष्ट्र बना दिया गया।

शक्तिशाली खमेर सम्राटों की भूमि कम्बोडिया एक कृषि प्रधान देश है। वहाँ द्वितीय विश्वयुद्ध के इण्डोचायना (हिन्द–चीन) में फ्रांसीसी साम्राज्यवाद के पतन के बाद कम्बोडिया को स्वतंत्र होने का अवसर मिला। 9 नवम्बर 1953 कोकम्बोडिया ने अपने को पूर्ण स्वतंत्र राज्य घोषित किया जिसकी पुष्टि 1954 केजेनेवा समझौते में हुयी। थाइलैण्ड अथवा स्यमा में राष्ट्रवादी आन्दोलन रू दक्षिण पूर्व एशिया के विभिन्न देशों में थाईलैण्ड या सिया नही एक ऐसा देश था जो राजनीतिक दृष्टि से किसी के अधीन नहीं था। और द्वितीय महायुद्ध के समय बर्मा और इण्डोचायना के बीच वह एक स्वतंत्र राष्ट्र था। थाईलैण्ड की राजनीतिक स्वतंत्रता कभी भी समाप्त नहीं हुयी। महायुद्ध के बाद मित्रराष्ट्रों ने थाईलैण्ड पर अधिकार करने का भार ब्रिटेन पर छोड़ा और वहाँ ब्रिटिश सेनाओं ने अधिकार करके वहाँ की सरकार के सम्मुख यह शर्त रखी की थाईलैण्ड पूरी तरह ब्रिटिश शासकों का नियंत्रण स्वीकार कर ले और उसका विदेशी व्यापार ब्रिटिश शासकों द्वारा नियन्त्रित हो तथा जब तक वह संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य न बन जाये। तब तक ब्रिटेन का संरक्षित देश रहे। अन्त में जनवरी 1946 को ब्रिटेन और थाईलैण्ड के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार (1) थाईलैण्ड को एक स्वतंत्र राज्य स्वीकार किया गया। (2) 1947 के पहले यहाँ ब्रिटिश लोगों को जो व्यापार सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे पुनः प्राप्त हुए तथा (3) महायुद्ध के समय ब्रिटेन को जो हानि उठानी पड़ी, थाईलैण्ड की सरकार ने वह हर्जाना देना स्वीकार किया। इस प्रकार थाईलैण्ड अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने में समर्थ हुआ। यद्यपि विभिन्न विदेशी शक्तियों ने उस पर अधिकार करने का प्रयास किया परन्तु किसी न किसी प्रकार थाईलैण्ड ने अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता को सुरक्षित रखा।

मलाया अथवा मलेशिया में राष्ट्रवादी आन्दोलन

भौगोलिक स्थिति रू सामरिक एवं भौगोलिक दृष्टि से मलाया (मलेशिया) का अपना एक विशिष्ट स्थान है। यूरोप, पश्चिम एशिया और भारत से पूर्व व दक्षिण पूर्व जाने का सबसे छोटा मार्ग मलाया के जलडमरुमध्य होकर जाता है। मलाया का निर्माण दो अलग–अलग क्षेत्रों को मिलाकर किया गया है। एक मलय प्रायद्वीप जो दक्षिण व दक्षिण पूर्व के क्राइस्थमस से लेकर उत्तर में जाहारे के जल डमरुमध्य तक विस्तृत है और दूसरा बोर्मियो द्वीप के उत्तर–पश्चिम किनारेपर स्थित है। इन दोनों क्षेत्रों के मध्य लगभग 400 मील की दूरी है। थाईलैण्ड व इण्डोनेशिया की सीमाएँ मलेशिया की सीमाओं से लगी हुयी है। मलाया के दक्षिण में सिंगापुर स्थित है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– मलाया प्रायद्वीप में भारतीय उपनिवेशों की स्थापना के साथ ही इस क्षेत्र का प्राचीन इतिहास प्रारम्भ होता है। 13वीं सदी के अन्त तक इस क्षेत्र में भारतीय

सभ्यता का वर्चस्व कायम रहा। 14वीं सदी के अन्त तक इस पर मुसलमानों का कब्जा हो गया। 16वीं सदी के प्रारम्भ में यूरोपियनों का आगमन शुरू हुआ। पहले पुर्तगाली और फिर डच आये और फिर 1909 तक अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया। तत्पश्चात् अंग्रेजों ने अपने अधिनस्थ मलेशियाई प्रदेशों को राजनीतिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से 3 असमान भागों में विभाजित कर दिया। तीन भाग इस प्रकार किये गये थे–

1. प्रथम भाग का नाम असंघीय मलय राज्य रखा गया गया। इसके अन्तर्गत जोहारे, केलान्तर, केदाह, तेन्गान और पेलिस राज्य सम्मिलित थे। इन राज्यों के मुस्लिम सुल्तानों में ब्रिटेन की अधीनता स्वीकार कर ली। भारत के देशी राजाओं की भाँति सैद्धांतिक रूप से ये पांचों स्वतंत्र राज्य थे, परन्तु सब सन्धियों द्वारा ब्रिशि निर्देशानुसार कार्य करने के लिये विवश थे।

2. द्वितीय भाग का नाम संघीय मलय राज्य रखा गया। इसमें पेशक, पेहाँग, सेलागोर और नेगी सेम्बिलान सम्मिलित थे। संघीय सरकार की शासन व्यवस्था ब्रिटेन द्वारा नियुक्त रेजिडेन्ट जनरल के हाथों में रखी गयी। कुआलालम्पुर को मलय संघ की राजधानी बनाया गया। 1935 में स्ट्रेटस सेटलमेंट के राज्यपाल को शासन संचालन का दायित्वप सौंपा गया। उसे संघीय मलय राज्य का हाई कमिशनर कहा जाने लगा।

3. तीसरे भाग का नाम स्ट्रेटस सेटलमेंट रखा गया। इसके अन्तर्गत सिंगापुर, मुलक्का पेनांग, वेलेजली प्रान्त और डिन्डिग्स के द्वीप एवं प्रदेश सम्मिलित थे। 1947 तक इस भाग का प्रशासन भारत के साथ ही किया गया। परन्तु बाद में इस भाग को ब्रिटिश राज्य की अधीनता में एक पृथक उपनिवेश बना दिया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में उपनिवेशवाद की समाप्ति (Decolonisation the International Relations)

एशिया में उपनिवेशवाद की समाप्ति रू एशिया समस्त महाद्वीपों में सबसे बड़ा है। समस्त विश्व के कुल क्षेत्र के एक तिहाई पर एशिया स्थित है। उत्तर से दक्षिण तक इसकी लम्बाई लगभग 5000 मील तथा पूर्व से पश्चिम तक 5,500 मील से अधिक है। इसकी तटीय रेखा 35,000 मील लम्बी है। एशिया में लगभग सभी प्रकार की जलवायु विद्यमान है। तथा यहाँ विश्व की जनसंख्या का 3 / 5 भाग रहता है। एशिया में उपनिवेशवाद की समाप्ति का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. यूरोपीय शोषण की अवस्था – 18वीं व 19वीं शताब्दी में जिस समय यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति का विस्तार हुआ एशिया ने अपनी प्राचीन व्यवस्था को अपनाये रखा जिसके कारण अविकासशीलता की स्थिति बनी रही और इसका लाभ यूरोप के शक्तिशाली राज्यों ने उठाया। एशिया में यूरोपीय साम्राज्यवाद का युग प्रारम्भ हुआ तथा लगभग 100 वर्षों में ही प्रायः सभी एशियाई राष्ट्रों पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया गया। सम्राज्यवादी शक्तियों के द्वारा किए गये आर्थिक शोषण के कारण एशियाई देशों की अर्थव्यवस्था पूरी तरह से डगमगा गई। इन देशों में पिछड़ापन, निर्धनता, रोगग्रस्तता, जातीय भेदभाव आदि व्याप्त हो गया। इन बुराईयों से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय विदेशी शासन को समाप्त करना था। पश्चिमी संस्कृति तथा विभिन्न देश की क्रान्तियों के परिणामस्वरूप वे राष्ट्रीय मुक्ति के उद्देश्य के प्रति बचनबद्ध एवं दृढ़निश्चयी हो गये।

2. राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों का प्रादुर्भाव –प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान विभिन्न एशियाई राष्ट्रों द्वारा आत्मनिर्णय के अधिकार की मांग की जाने लगी थी। 1917 में ब्रिटेन की सरकार ने भारत में स्वशासन का निर्णय लिया। इससे भारत व अन्य एशियाई राष्ट्रों के मुक्ति आन्दोलनों को बल मिला। इन दौरान यूरोपीय राष्ट्रों की शक्ति क्षीण होने तथा भारत जैसे देशों राष्ट्रीय मुक्ति की तीव्रता सेअन्य एशिया राष्ट्रों के मुक्ति आन्दोलनों कास मार्ग भी प्रसस्त हो गया। सन् 1947 ई. में स्वतंत्र भारत के प्रादुर्भाव से इन आन्दोलनों में और भी तीव्रता आई।

3. भारत के उत्थान का प्रभाव – भारत के स्वतंत्र होते ही वर्मा, श्रीलंका, इण्डोनेशिया, लाओस, कम्बोडिया आदि राज्य भी स्वतंत्र बन गए। भारत इण्डोनेशिया आदि राष्ट्रों ने गुटनिर्पेक्षता की नीति एवं स्वतंत्र विदेश नीतियों को अपनाकर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सक्रिय रूप से भाग लिया। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में एशियाई पुनरुत्थान की प्रक्रिया को उस समय और भी सुद्रढ़ता प्राप्त हुई जबकि भारत ने एशियाई सम्बन्ध सम्मेलन का नेतृत्व किया।

4. चीन का साम्यवादी शक्ति के रूप में उत्थान – सन् 1949 ई. में चीन का एक साम्यवादी शक्ति के रूप में उत्थान हुआ। इस घटना ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को व्यापक रूप से प्रभावित किया। सम्राज्यवादी शक्तियाँ साम्राज्यवाद के विस्तार को नियंत्रित करना चाहती थी अतः उन्होंने एशिया में बढ़ते राष्ट्रवाद को मान्यता देना उचित समझा। परिणामस्वरूप एशियाई राजनीति जटिल हो गयी।

5. विचार धाराओं में अन्तर – साम्यवादी एवं गैर साम्यवादी राज्यों की राजनीति व्यवस्थाओं में पर्याप्त अन्तर था यही कारण था कि गुट निर्पेक्ष राष्ट्रों को छोड़कर अन्य एशियाई राज्यों ने विरोधी विदेश नीतियाँ अपनानी आरम्भ कर दीं। भारत जैसे एशियाई देशों ने उदार लोकतन्त्रों की नीति अपनाई। एशिया देशों की स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अत्यधिक जटिल हो गई तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में द्विध्रुवीकरण को प्रादुर्भाव हुआ।

6. एशियाई एकता को सुदृढ़ करने के प्रयास –एशियाई एकता को सुदृढ़करने के उद्देश्य से विभिन्न एशियाई व अफ्रीकी देशों ने श्एशिया सम्बन्ध सम्मेलनश प्रारम्भ किये। इन एशियाई सम्बन्ध सम्मेलनों का उद्देश्य अफ्रीकी राज्यों को सम्मिलित करके अफ्रीकी–एशियाई एकता को सुद्रढ़ प्रदान करना था। जनवारी 1949 ई. में 15 राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें उपनिवेषवाद के विरुद्ध युद्ध के विषय पर विचार–विमर्श किया गया। अप्रैल 1954 ई. के सम्मेलन में भारतपाकिस्तान, वर्मा, इण्डोनेशिया व श्रीलंका द्वारा भारत–चीन समस्या पर विचार–विमर्श हुआ। 18 अप्रैल 1955 से 27 अप्रैल, 1955 तक एशियाई देशों का प्रमुख सम्मेलन हुआ, जिसमें 29 एशियाई व अफ्रीकी देशों ने भाग लिया। साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष करने का भी निर्णय लिया गया।

प्रो. रोमेन के अनुसार– ''बाण्डुंग सम्मेलन एशिया में यूरोपीय प्रभुत्व के युग के अन्त का प्रतीक था। इसने औपचारिक रूप से पुराने एशिया को समाप्त करके नये एशिया में प्रवेश कराया।''

7. 1955 ई. से 1962 ई. तक का काल – बाण्डुंग सम्मेलन के पश्चात् इस काल में जहाँ एक ओर अफ्रीकी– एशियाई राष्ट्र जातिवाद, साम्यवाद का उपनिवेशवाद के विरुद्ध

सामूहिक संघर्ष करने लगे थे। वहीं दूसरी ओर इन राष्ट्रों की राजनीतियों में अनेक हानिकारक प्रवृत्तियाँ भी पनपने लगी थी। सन् 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया था तथा पाकिस्तान को भी भारत के विरुद्ध उकसाना प्रारम्भ कर दिया।

दोनों महाशक्तियों ने भी तृतीय विश्व के आन्दोलन को सीमित करने का प्रयास किया किन्तु 1987 ई. के पश्चात महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में अपनी स्थिति सुदृढ़ रखने के लिए एशियाई राज्यों को अपने मतभेद शान्तिमय तरीकों से सुलझाकर आपसी सहयोग की प्रक्रिया को सुदृढ़ करना होगा।

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लैटिन अमेरिका के स्वतंत्र राज्यों में राजनीतिक विरोध का भी प्रादुर्भाव हो गया। राज्यों के मध्य उपनिवेश काल से चली आ रही सीमायें थी विवाद का कारण बनीं। ओ०ए०एस० आर्थिक विकास का एक प्रमुख साधन हुआ।

साम्यवादी और गैरसाम्यवादी राष्ट्रों के मध्य भी विचारधारा सम्बंधी झगड़े उत्पन्न हुए क्यूबा में साम्यवाद को नियन्त्रित करने के प्रयास ने स्थित को और भी विकट बना दिया। एशिया व अफ्रीका के समान लैटिन अमेरिका के समक्ष भी सामाजिक, आर्थिक पुनर्निमाण एवं राष्ट्र निर्माण की समस्या है। अमेरिका द्वाराअमेरिका में अमेरिका समर्थित शासन की स्थापना के भी प्रयास किये गये। इसी प्रकार श्डालर कूटनीति का अर्थ है लैटिन अमेरिका के देशों को उनके व्यापारिक प्रयत्नों में प्रोत्साहन देना। इस प्रकार अमेरिका अर्थव्यवस्था के नियन्त्रण द्वारा यहाँ की राजनीति पर नियंत्रण स्थापित करना चाहता था।

एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका में उपनिवेशवाद की सम्पत्ति के लिए उत्तरदायी कारक

एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका में उपनिवेशवाद की समाप्ति के लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी रहे हैं–

1. द्वितीय विश्वयुद्ध – द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान यूरोपीय राष्ट्रों के जान–माल की भारी क्षति हुई। यूरोपीय राज्यों की समस्याओं व निर्बलताओं ने उनके उपनिवेशीय नियन्त्रण को कमजोर बना दिया। अपने आन्तरिक सामाजिक व आर्थिक पुर्ननिर्माण की ओर ध्यान देने के उद्देश्य से यूरोपीय शक्तियों ने सामाज्य ने अपना अधिकार छोड़ना प्रारम्भ कर दिया।

2. 1917 ई. की सोवियत क्रान्ति का प्रभाव – सन् 1917 ई. की सोवियत क्रांति के द्वारा सोवियत संघ की जनता ने जार शासकों की निरंकुशता पर विजय प्राप्त कर ली थी। इस क्रान्ति ने यूरोपीय उपनिवेशों के लोगों की साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित किया।

3. अमेरिका का प्रादुर्भाव –द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त अमेरिका विश्व राजनीति में एक महाशक्ति के रूप में उभरकर सामने आया। अमेरिका ने प्रत्येक राष्ट्र एक राज्य तथा श्आत्म निर्णय का अधिकार जैसे सिद्धांतों को मान्यता प्रदान की। अमेरिका ने भारत आदि राज्यों के स्वतंत्रता आन्दोलन में भी सहायता पहुँचाई। अमेरिका ने इस नीति पर अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

4. शीत युद्ध – सन् 1945 ई. के बाद सोबियत संघ व अमेरिका के मध्य शीत युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों ने अपने–अपने गुटों की शक्ति में वृद्धि करने के उद्देश्य से स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन कर रहे राज्यों को समर्थन देना आरम्भ कर दिया।

5. उपनिवेशवाद की समाप्ति हेतु आन्दोलन – उपनिवेशवाद की समाप्ति में राष्ट्रीय मुक्त आन्दोलनों का विशेष योगदान रहा। भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की 1947 में प्राप्त सफलता ने अन्य क्षेत्रों के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों को प्रोत्साहित किया। संयुक्त राष्ट्र के सकारात्मक प्रस्तावों एवं अफ्रीकी–एशियाई एकात्मकता आन्दोलन ने भी उपनिवेशवाद की समाप्ति के आन्दोलनों को सुदृढ़ता प्रदान की।

6. तकनीकी क्रान्ति – यातायात व संचार के क्षेत्र में तकनीकि क्रान्ति के परिणाम स्वरूप नवीन एवं शीघ्रगामी साधनों का विकाश हुआ। जिसके परिणामस्वरूप परस्पर राजनीतिक, आर्थिक, व्यापारिक व सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हुए। यह तकनीकि क्रान्ति एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के लिए शक्ति का साधन सिद्ध हुई।

इस प्रकार उपरोक्त कारक एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के लिए शक्ति का साधन सिद्ध हुई तथा उपनिवेशवाद की समाप्ति के सहायक सिद्ध हुई।

तृतीय विश्व के उत्थान का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रभाव रू एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के स्वतंत्रता आन्दोलन के परिणामस्वरूप तृतीय विश्व के दौरान उत्थान ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में यूरोपीय आधिपत्य की समाप्ति हो गई तथा विश्व के देशों की विश्व राजनीति में सक्रिय भूमिका प्रारम्भ हो गई। तृतीय विश्व के उत्थान के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर निम्नलिखित प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं–

1. साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद की समाप्ति – एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के स्वतंत्रता आन्दोलनों के परिणामस्वरूप साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद की भारी क्षति हुई। ये राष्ट्र संयुक्त राष्ट्रसंघों पर भी साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद को निन्दनीय घोषित कराने में सफल रहे।

2. प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र राज्यों की संख्या में वृद्धि – उपनिवेशवाद की समाप्ति के परिणामस्वरूप एक बड़ी संख्या में प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य अस्तित्व में थे। सन् 1945 ई. में प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य–राष्ट्रों की संख्या मात्र 50 थी, जो 980 तक बढ़कर 160 हो गई। परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का स्वरूप परिवर्तित होकर जटिल हो गया।

3. संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका परिवर्तन –प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रों की संख्या में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्य संख्या में भी परिवर्तन आया। प्रारम्भ में सदस्य संख्या 51 थी जो बढ़कर 189 हो गई। महासभा में नये राज्यों का प्रवेश हो गया जबकि सुरक्षा परिषद में पाँच सदस्यों को प्रधानता अभी भी स्थापित थी।

4. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में जटिलता – सम्प्रभु राज्यों की संख्या में वृद्धि होने से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध जटिल एवं समस्यात्मक हो गये। नाम य छ।डद्ध अफ्रीकी, एशियाई आन्दोलन तथा तृतीय विश्व आन्दोलन ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नई परिस्थितियों को जन्म दिया।

5. विश्व शान्ति का आदर्श – नये राज्यों के द्वारा विश्व शान्ति के आदर्श के प्रति अपनी वचनबद्धता व्यक्त हो गई क्योंकि सामाजिक एवं आर्थिक पुर्ननिर्माण तथा विकास कार्यों के लिए वे आवश्यक मानते थे। नवोदित राज्य किसी भी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय विवाद में रुचि नहीं रखते थे। इन राष्ट्रों का 'गुटनिर्पेक्षता' एवं पंचशीलश के सिद्धांतों को अपने विशेष नीति के मूल सिद्धांत के रूप में अपनाया गया।

6. आर्थिक सम्बन्धों के महत्व में वृद्धि –वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में आर्थिक पहलू ही राजनीतिक आयामों को प्रशासित करता है। नवोदित राष्ट्र अपने विकास के लिए विकसित राष्ट्रों पर निर्भर है जिसके कारण ये आर्थिक शोषण के शिकार हो जाते हैं। इस शोषण से मुक्ति हेतु नवोदित राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की पुर्नसंरचना चाहते थे। इस हेतु ये राष्ट्र विश्व की आय के साधनों का समान विभाजन चाहते थे। आर्थिक सार्थक तथा न्यायपूर्ण आर्थिक सहयोग केलिए ये राष्ट्र NIEO का समर्थन करते हैं।

7. परमाणु निशस्त्रीकरण की मांग – एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के द्वारा अमेरिका के परमाणुशस्त्रों पर एकाधिकार को भी चुनौती प्रदान की गई है। ये राष्ट्र विश्व में पूर्ण निशस्त्रीकरण का समर्थन कर रहे थे।

8. गुटनिर्पेक्ष आन्दोलन का प्रादुर्भाव –एशिया व अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों ने शीतयुद्ध से बचने के उद्देश्य से गुट निरपेक्षता की नीति को अपनाया। बाद में लैटिन अमेरिका राष्ट्र में भी इसमें सम्मिलित हो गए। आपसी सहयोग व एकता की दृष्टि से 1961 ई. में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन आरम्भ किया गया। कुछ ही समय में NAMविश्व व्यापी आन्दोलन बन गया। इन देशों का पुनरुत्थान तृतीय विश्व के पुनरुत्थान का प्रतीक था। वर्तमान में ये राष्ट्र विश्व राजनीति में अपनी स्वतंत्र एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का दृढ़ प्रयत्न कर रहे हैं।

अध्याय–11

शीतयुद्ध और उसके प्रभाव

शीतयुद्ध अर्थ एवं परिभाषाएँ (Cold War : MeaningAnd Definitions)

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में दो विरोधी प्रतियोगियों के मध्य तनावपूर्ण सम्बंधों को श्शीतयुद्धश की संज्ञा दी जाती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरानत ऐसे तनावपूर्ण सम्बन्ध सोवियत संघ एवं अमेरिका के मध्य शनैः शनैः विकसित हुए। युद्धोत्तर काल में सोवियत संघ एवं अमेरिका के मध्य सम्बन्धों में अविश्वास एवं संशय की भावना ने जन्म ले लिया। विश्व परिदृश्य में विभिन्न समस्याओं के सन्दर्भ में अविश्वास में दोनों ने एक दूसरे को परस्पर विरोधी गुटों में खड़े पाया। विचारधारा एवं राजनीतिक नीतियों सम्बन्धी विरोध तीव्रतर होते गये। यह एक प्रकार का मनौवैज्ञानिक युद्ध था जिसमें एक दूसरे को विभाजित करने का प्रयास किया गया। विश्व के अन्य देशों के साथ विरोधी शक्ति के विरुद्ध सुरक्षा समझौते किये गये। परिणामतः विश्व दो खेमों अथवा गुटों में विभक्त हो गया। यद्यपि दोनों शक्तियों के मध्य कोई हिंसक युद्ध नही हुआ किन्तु तनाव एवं संकट के कारण निरन्तर युद्ध की आशंका बनी रही।

शीतयुद्ध को परिभाषित करते हुए जोसेफ फ्रैंकल का कथन है– ''शीतयुद्ध को दो बड़े राज्यों के मध्य विद्यमान गहरी प्रतियोगिता अर्थात् चालों तथा प्रतिचालों का सिलसिला माना जा सकता है।''

के.पी.एस मेनन के शब्दों में, ष्शीतयुद्ध जैसा कि विश्व ने अनुभव किया, दो विचारधाराओं के मध्य पूँजीवाद तथा साम्यवाद दो व्यस्थाओं– बुर्जुआ लोकतंत्र तथा सर्वहारा तानाशी, दो गुटों– नाटो तथा वारसा समझौता दो राज्यों अमेरिका तथा सोवियत संघ, दो व्यक्तियों– जॉन फॉस्टर डल्लास तथा स्टालिन के मध्य युद्ध रहा।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि शीत युद्ध राजनीतिक या मनोवैज्ञानिक युद्ध कला द्वारा जारी तथा स्थापित निरन्तर विरोध, तनावों एवं फूट की स्थिति है जिसमें विरोधी राज्यों के मध्य प्रत्यक्ष युद्ध नहीं होता। इसे गहन दूषित राजनीतिक, आर्थिक एवं वैचारिक प्रतियोगिता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

शीतयुद्ध की प्रकृति (Nature of Cold War) – सन् 1971 से 1979 तक के काल को छोड़कर सन् 1945 से 1990 तक काल में सम्पूर्ण विश्व पर शीत युद्ध का प्रकोप व्याप्त रहा। शीत युद्ध की प्रकृति अथवा प्रमुख लक्षण निम्नलिखित थे–

1. शीत युद्ध में प्रदेशों में परोक्ष युद्ध तो होता था किन्तु प्रत्यक्ष युद्ध से दूर रहने का प्रयास किया जाता था।

2. शीत युद्ध में संलग्न प्रत्येक राज्य अपनी शक्ति का विस्तार इस प्रकार करता था कि विरोधी राज्य अथवा राज्यों की शक्ति को साबित कर सके।

3. विरोधी शक्तियों के मध्य शस्त्र प्रतिस्पर्धा बनी रहती है।

4. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तनावग्रस्त एवं संकटपूर्ण होती है।

5. शीत युद्ध राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक युद्ध की स्थिति है।

6. इसमें दिमाग का युद्ध,स्नायु युद्ध एवं प्रचार युद्ध चलता रहता है।

7. विश्व शान्ति व सुरक्षा को खतरा बना रहता है तथा युद्ध की आशंका सदैव बनी रहती है।

8. राष्ट्रों में परस्पर भय एवं अविश्वास व्याप्त रहता है।

1980 से 1990 के मध्य चलने वाले शीत युद्ध की प्रकृति इस पुराने शीत से कुछ भिन्न थी। यह भिन्नता निम्नवत् थी–

1. पुराने शीत युद्ध का केन्द्र यूरोप था जबकि नये शीतयुद्ध का केन्द्र एशिया था।

2. नया शीतयुद्ध अपेक्षाकृत अधिक भयानक था।

3. नये शीतयुद्ध में चीन भी सम्मिलित हो गया था।

4. पुराने शीत युद्ध में दोनों महाशक्तियाँ समानता की स्थिति बनाये रखने के लिए प्रयासरत थी जबकि नये शीतयुद्ध में प्रत्येक महाशक्ति विश्व राजनीति में अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहती थी।

5. पुराना शीतयुद्ध द्विध्रुवीकरण पर आधारित था किन्तु नये शीत युद्ध में द्विध्रुवीकरण का स्थान बहु केन्द्रवाद ने ले लिया था।

6. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भाग लेने वाले देशों की संख्या पुराने शीत युद्ध की अपेक्षा नवीन शीत युद्ध में अधिक थी।

7. पुराने शीतयुद्ध के समय दोनों महाशक्तियों ने यह स्वीकार किया था कि परमाणु युद्ध वास्तव में नहीं लड़ा जा सकता क्योंकि यह पूर्ण तबाही ले आयेगा। किन्तु परमाणु शस्त्रों की वृद्धि नई तकनीकी की जटिलता आदि कारणों ने नये शीत युद्ध के समय परमाणु युद्ध की सम्भावना को प्रोत्साहित किया।

इस प्रकार प्रकृति के दृष्टिकोण से नवीन शीतयुद्ध से अधिक भयानक था।

शीतयुद्ध के लिए उत्तरदायी कारण (Responsible Factors for Cold War)

शीतयुद्ध के उत्पत्ति के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे–

1. वैचारिक मतभेद – पूँजीवाद तथा साम्यवाद के मध्य तथा बुर्जुआ लोकतंत्र एवं सर्वहारी तानाशाही के मध्य वैचारिक मतभेद के कारण को जन्म दिया। अमेरिका पूँजीवादी विचारधारा का एवं सोवियत संघ साम्यवादी विचारधारा का प्रतीक बन गया। दोनों महाशक्तियाँ एक दूसरे की विचारधाराओं के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए प्रयत्नशील थी। इस हेतु दोनों देशों ने नीतियाँ बनानी आरम्भ कर दी।

2. परस्पर अविश्वास एवं भय – अमेरिका के नेतृत्व में पूँजीवादी देशों ने साम्यवाद के विरुद्ध तथा साम्यवाद ने पूँजीवाद के विरुद्ध लड़ने का निश्चय किया जिसके परिणामस्वरूप दोनों शक्तियाँ एक दूसरे की कटु आलोचक बन गई तथा दोनों के मन एक दूसरे के प्रति अविश्वास एवं भय की भावना से व्याप्त हो गये।

3. सोवियत संघ की विस्तारवादी रीति – सोवियत संघ के पूर्वी यूरोप में प्रभाव प्रसार से पश्चिमी का सशंकित होना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त सोवियत संघ टर्की, यूयान व ईरान पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी शक्ति के पक्ष में दबाव डाल रहा था। विदेश मंत्रियों के लंदन सम्मेलन ने भी इस विचार को बल प्रदान किया कि साम्यवाद विश्व के लिये खतरा है।

4. संयुक्त राज्य द्वारा अलगांव की नीति का त्याग – दोनों महाशक्तियों द्वारा अपनी नीतियों का निर्धारण एक–दूसरे का प्रभाव एवं शक्ति कम करने के उद्देश्य से किया गया। इसी के तहत संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपनी अलगाव की नीति का परित्याग कर दिया तथा यूरोप व अन्य स्थानों से फैले शक्ति शून्य को भरने का प्रयास किया।

5. मार्शल योजना – सन् 19476 में अमेरिका द्वारा मार्शल योजना के तहत श्यूरोपीय पुनर्निर्माण कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इसका उद्देश्य पीड़ित यूरोप के सामाजिक व आर्थिक पुनर्निर्माण हेतु सहायता प्रदान करना था किन्तु वास्तव में यह यूरोप के राज्यों को साम्यवाद से दूर ले जाने का प्रयत्न था। मार्शल योजना के माध्यम से अमेरिका पूर्वी यूरोप में सोवियत संघ के बढ़ते प्रभाव को नियंत्रित करके अपना वर्चस्व बढ़ाना चाहता था।

6. टुमैन सिद्धांत – मार्च 1947 के टुमैन सिद्धांत के अनुसार अमेरिका की यह नीति होनी चाहिए कि वह उन स्वतंत्र लोगों का समर्थन करे जो सशक्त अल्पसंख्यकों या बाहरी दबाव द्वारा किये जाने वाले दमन का विरोध कर रहे हैं। यह भी कहा गया कि, ''यदि विश्व के स्वतंत्र लोगों पर साम्यवादी तानाशाही स्थापित हो गई तो विश्व शान्ति को खतरा उत्पन्न हो जायेगा एवं परिणामस्वरूप अमेरिकी महाद्वीप को सुरक्षा को भी खतरा पैदा हो जायेगा।'' वास्तव में टुमैन सिद्धांत का उद्देश्य साम्यवाद को नियंत्रित करना तथा बाल्कान एवं मध्य पूर्व में सोवियत संघ के विस्तार के प्रयत्नों को रोकना था। राष्ट्रपति टुमैन के कहने पर अमेरिकी सीनेट ने तुर्की व यूनान को 400 लाख डॉलर की सहायता लोकतान्त्रिक व्यवस्था एवं स्वतंत्रता को बनाये रखने के उद्देश्य से देना स्वीकारकिया। इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था सम्बन्धों में अमेरिका के सक्रिय भाग लेने का युग प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात सोवियत संघ की विस्तारवादी नीति का विरोध कर रहे सभी राज्यों को अमेरिका द्वारा सहायता प्रदान की गई।

7. सोवियत संघ की प्रतिक्रिया – सोवियत संघ ने समझ लिया था कि अमेरिका की टुमैन योजना एवं मार्शल योजना विश्व राजनीति में अलग अथवा एकाकी करने की योजना है। अतः उसने प्रतिक्रियास्वरूप यूरोप के नये समाजवादी राष्ट्रों को अमेरिका की मार्शल योजना से दूर रहने के लिए प्रेरित किया। सोवियत संघ प्रतिक्रियास्वरूप मॉलोटोव योजना पारस्परिक आर्थिक सहायता सन्धि तथा साम्यवादी सूचना केन्द्र की स्थापना की।

8. चर्चिल का फुल्टन भाषण – मार्च 1946 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने अपने प्रसिद्ध फुल्टन भाषण में साम्यवाद से खतरे सम्बन्धी विचारधारा का सार प्रस्तुत किया। साथ ही

सोवियत संघ की पाश्विकता के विरुद्ध युद्धोत्तर संघर्ष को अनिवार्य बताया गया तथा कहा गया कि सोवियत संघ केवल एक ही भाषा समझता है और वह है 'शक्ति की भाषा।'

9. परमाणु बम का रहस्य – संयुक्त राज्य अमेरिका ने परमाणु बम का निर्माण करने के पश्चात् ब्रिटेन को भी अवगत करा दिया, किन्तु सोवियत संघ से इस बात को गुप्त रखा। इसी प्रकार जापान के हिरोशिमा व नागासाकी नगरों पर परमाणु बम गिराने से पूर्व अमेरिका ने ब्रिटेन से तो परामर्श किया, किन्तु सोवियत संघ से नहीं। परिणामतः सोवियत संघ ने अमेरिका पर विश्वासघात का आरोप लगाया।

10. इटली का प्रश्न – अमेरिका एवं ब्रिटेन इटली में यथा–स्थिति बनाये रखना चाहते थे और इसके लिए वे मुसोलिनी के पुलिस एवं अन्य फासिस्ट तत्वों की सहायता लेना चाहते थे। उनकी इस नीति से सोवियत संघ असहमत था।

11. परस्पर विरोधी प्रचार – युद्धकाल में ब्रिटिश सरकार ने अपनी सेनाओं में निरन्तर विरोधी साहित्य का प्रचार किया। इसी प्रकार अमेरिकन समाचार पत्रों में इस प्रकार के शीर्षक छपे, 'साम्यवादी प्रसार से ईसाई सभ्यता के डूबने काखतरा', 'सोवियत संघ गुण्डों का नीच गिरोह' आदि। प्रत्युत्तर में सोवियत पत्र पत्रिकाओं में अमेरिका के विरुद्ध कटु आलोचनात्मक लेख प्रकाशित होने लगे।

उपर्युक्त कारणों ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विशेषतया सोवियत संघ एवं अमेरिका के मध्य शीत युद्ध को उत्पन्न किया।

शीत युद्ध के वैचारिक एवं राजनीतिक अंतर

शीत युद्ध के वैचारिक एवं राजनतिक आधारों का अध्ययन करने के लिए सोवियत संघ एवं अमेरिका मे मध्य मतभेदों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

(1) पूर्व के विरुद्ध पश्चिम की शिकायतें पश्चिम के विरुद्ध पूर्व की शिकायतें।

(2) पूर्व के विरुद्ध पश्चिम की शिकायतें पूर्व के विरुद्ध पश्चिम की शिकायतों का तात्पर्य है सोवियत संघ के विरुद्ध ऐंग्लो–अमेरिकी शिकायतें। ये शिकायतें निम्नलिखित थी–

1. वैचारिक मतभेद या साम्यवाद बनाम पूँजीवाद – अमेरिका एवं सोवियत संघ दो भिन्न विचारधाराओं क्रमशः पूँजीवादी एवं साम्यवाद का समर्थन कर रहे थे। सोवियत संघ की समाजवादी क्रांति की सफलता ने पश्चिमी देशों को साम्यवाद के खतरे के प्रति संशकित कर दिया था। पश्चिमी देश साम्यवाद के अन्य देशों में होने वाले प्रसार को नियंत्रित कर सोवियत प्रभाव को क्षीण करना चाहते थे। पश्चिमी शक्तियों एवं सोवियत संघ के इस वैचारिक मतभेद का ही प्रत्यक्ष परिणाम शीत युद्ध था। अपनी–अपनी विचारधाराओं पर अडिग रहना ही दोनों महाशक्तियों के मध्य विभिन्न संघर्षों का कारण बना। स्न् 1911 में सोवियत संघ में समाजवादी क्रांति आने के पश्चिमी शक्तियों को यह भय होने लगा कि इस घटना का प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों एवं अन्यदेशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं पर भी अवश्य पड़ेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में साम्यवाद के बढ़ते खतरे ने पश्चिमी देशों को संशकित कर दिया। सोवियत संघ की समाजवादी क्रांति का ही प्रभाव था कियूरोप के प्रायः सभी राज्यों में मजदूर आन्दोलन लोकप्रिय हो गये। यूरोपियन राज्यों में समाजवादी दलों के प्रादुर्भाव ने पूंजीवादी राष्ट्रों को सचेत कर दिया। पूँजीवाद द्वारा साम्यवाद का विरोध करने का प्रमुख कारण यह था कि ये इसे विध्वंसक आन्दोलन मानते थे क्योंकि इस विचार धारा में वर्ग–हित को राष्ट्र हित की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता था। साम्यवादी विचारधारा के अनुसार विश्व भर के मजदूरों का अपना कोई देश नहीं होता। इसी आधार पर सोवियत संघ द्वारा विभिन्न राष्ट्रों के समाजवादी आन्दोलनों को समर्थन प्रदत्त किया गया।

परिणामस्वरूप पूँजीवादी राष्ट्रसोवियत संघ से रुस्ट हो गये। साथ ही इसी वैचारिक मतभेद ने उग्र रूप धारण कर लिया पूँजीवाद राष्ट्रों ने विभिन्न नीतयों के माध्यम से सोवियत संघ द्वारा प्रदर्शित करना अवश्यम्भावी था। परिणामस्वरूप इस वैचारिक आधार पर शीत युद्ध का प्रारम्भ हुआ जिसने अनेकों राजनीतिक कारणों को भी जन्म दिया।

2. राजनीतिक आधार पर शिकायतें – पश्चिमी देशों को सोवियत संघ से राजनीतिक आधार पर निम्नलिखित शिकायतें थी जो कि शीत के जन्म का कारण बनी।

1. याल्टा समझौते का उल्लंघन – पश्चिमी देशों को शिकायत थी की सोवियत संघ ने अग्रलिखित आधारों पर याल्टा समझौते की शर्तों को लिया है।

(क) पोलैण्ड के लोकतांत्रिक नेताओं की गिरफ्तारी में सहयोग दिया।

(ख) पोलैण्ड की न्यूबीनान सरकार की स्थापना में सहयोग देकर सोवियत संघ ने पोलैण्ड में चुनी हुई सरकार को सत्ता स्थानान्तरण करने की शर्त को भंग किया है।

(ग) पोलैण्ड में अमेरिकी एवं ब्रिटिश निरीक्षकों के प्रवेश में अनुमति देने से इन्कार किया।

(घ) पूर्वी यूरोप का सोवियतकरण किया।

(च) जापान के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने तथा साइवेरिया के हवाई अड्डे को मित्र राष्ट्रों द्वारा प्रयोग करने की अनुमति देने में सोवियत संघ द्वारा हिचकिचाहट दिखाना।

(छ) चीन के ग्रह युद्ध में हस्तक्षेप कर सोवियत संघ ने साम्यवादियों को सहायता प्रदान की।

2. ईरान का मामला – सन् 1942 के समझौते के अनुसार यह निश्चित किया गया कि जर्मनी के आत्म समर्पण के छः महीने के अन्दर सोवियत संघ एवं पश्चिमी शक्तियाँ ईरान से अपनी सेवायें हटा लेगी। युद्धोपरान्त ब्रिटेन व अमेरिका ने अपनी सेनायें हटा ली, किन्तु सोवियत संघ ने ऐसा नहीं किया, जिसके कारण ईरान में विद्रोह हो गया।

पश्चिमी शक्तियों ने इसका कड़ा विरोध किया अन्ततः संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्तक्षेप के पश्चात् ही सोवियत संघ सेनायें हटाने के लिए सहमत हुआ। किन्तु सोवियत संघ के इस कृत्य से पश्चिमी शक्तियाँ उसके प्रति संशकित हो गई।

3. सोवियत संघ का टर्की पर दबाव – युद्धोपरान्त सोवियत संघ ने टर्की पर दबाव डालकर कतिपय क्षेत्रों की विशेषता या बॉफेयरस में सैनिक अड्डा बनाने की मांग की। टर्की एवं पश्चिमी शक्तियों द्वारा इसका विरोध किया गया। अमेरिका के राष्ट्रपति टुमैन ने प्रसिद्ध टुमैन सिद्धांत प्रतिपादित कर उन सभी राष्ट्रों को सहायता देने का वायदा किया जो स्वेच्छापूर्वक सरकार बनाने के लिए संघर्षरत थे। इसके तहत टर्की को आर्थिक सहायता प्रदान भी की गई।

4. सोवियत संघ पर यूनान का दबाव – यूनान में यूनानी सेनाओं एवं साम्यवादी मुरिल्लों के मध्य युद्ध प्रारम्भ होने पर सोवियत संघ द्वारा साम्यवादियों को सहायता प्रदान की गई।

इस परिस्थिति में अमेरिका व सोवियत संघ के मध्य चलने वाला शीत युद्ध और भी गहरा हो गया।

5. सोवियत संघ का जर्मनी पर दबाव – पश्चिमी शक्तियों ने जर्मनी के सम्बन्ध में सोवियत संघ की निम्नलिखित नीतियों का विरोध किया–

1. जर्मननेताओं एवंलोगों का देश निकाला अथवा कारावास का दण्ड देना।

2. पूर्व से जर्मनी से क्षतिपूर्ति के रूप में औद्योगिक मशीनों में सोवियत संघ ले जाने का निर्णय।

3. जर्मनी के समाजवादी दल का बलपूर्वक साम्यवादी दल में विलय करना।

4. पूर्वी जर्मनी को पश्चिमी जर्मनी से अलग करने का निर्णय।

5. जर्मनी को एक आर्थिक क्षेत्र मानने से इन्कार करना।

6. पोलैण्ड तथा जर्मनी के मध्य ओड़े नीस को सीमा बनाने का निर्णय।

6. बर्लिन का मामला –बर्लिन अधिपत्य को लेकर भी सोवियत संघ व अमेरिका के मध्य तनाव में वृद्धि हुई। सोवियत संघ द्वारा पूर्वी बर्लिन तथा पश्चिमी शक्तियों द्वारा पश्चिमी बर्लिन पर नियंत्रण भी तनाव का कारण सिद्ध हुआ। इसके प्रत्युत्तर में पश्चिमी शक्तियों ने पश्चिम बर्लिन में वायुयानों द्वारा माल भेजने का निर्णय लिया इन घटनाओं से शीत युद्ध तनावों में अत्यधिक वृद्धि हो गई।

उन्होंने ने सोवियत संघ के प्रति कठोर नीति अपनाने का निर्णय किया जिसके परिणाम स्वरूप वैचारिक आधार पर प्रारम्भ हुए शीत युद्ध ने राजनीतिक शीत युद्ध का रूप ले लिया। सोवियत संघ द्वारा सुरक्षा परिषद निरन्तर वीटों के प्रयोग से भी पश्चिमी शक्तियाँ रुष्ट थी।

(2) पश्चिम के विरुद्ध पूर्व की शिकायतें – जिस प्रकार पश्चिमी शक्तियों को सोवियत संघ से कई शिकायतें थी उसी प्रकार पूर्व अर्थात् सोवियत संघ भी पश्चिमी शक्तियों की विभिन्न नीतियों एवं कार्यवाहियों से उत्तेजित था।

1. जर्मनी का मामला – स्टालिन के अनुसार, षजिस समय जर्मनी की सेनायें मोर्चा तेजी से सोवियत संघ की ओर बढ़ रही थी तो जर्मनी के विरुद्ध दूसरा खोलने की बड़ी आवश्यकता थी।[8] स्टालिन की इस बात के प्रत्युत्तर में चर्चिल व रुजर्वेल्ट का कहना था कि जर्मनी के विरुद्ध दूसरा मोर्चा खोलने के लिए पूर्णतैयारी की आवश्यकता थी। यद्यपि बाद में पश्चिमी शक्तियाँ जर्मनी के विरुद्ध दूसरा मोर्चा खोलने के लिए तैयार भी हो गयी किन्तु उन्होंने मध्य यूरोप की ओर से युद्ध करने का निश्चय किया। सोवियत संघ का आरोप था कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सोवियत संघ की प्रक्रिया भागीदारी को नियंत्रित करने के लिए ही ऐसा किया गया।

2. फासीवाद इटली से पश्चिमी सम्बन्ध –सोवियत संघ का मानना था कि इटली में फासीवाद के उदय में पश्चिमी शक्तियों का योगदान था पूँजीपतियों अथवा पश्चिमी शक्तियों ने फासीवाद का प्रयोग साम्यवाद में किया। पश्चिमी शक्तियों की इटली के साथ सम्बन्ध बढ़ाने की उत्सुकता ने सोवियत संघ के इस विश्वास को और भी दृढ़ कर दिया।

3. युद्ध कालीन अपर्याप्त सहायता – युद्ध के समय जर्मनी द्वारा किये गये क्षति हुई तथा उसे आशा की थी कि ऐसे समय पश्चिम सहायता करके अपना कर्तव्य निभायेगा। किन्तु आशा के विपरीत पश्चिमी सहायता बिलम्ब से एवं अपर्याप्त रूप से प्राप्त हुई। कुल आवश्यकताओं का केवल 4 प्रतिशत ही सहायता रूप में प्राप्त हुआ।

आगामी पश्चिमी कार्यवाहियों ने इस नाराजगी को और भी बढ़ा दिया। जर्मनी के आत्म–समर्पण करते ही अमेरिका ने सोवियत संघ को लेंड–लीस समझौते के अन्तर्गत दी जाने वाली सहायता समाप्त कर दी।

4. परमाणु बम का रहस्य – अमेरिका ने परमाणु बम रखने एवं हिरोशिमा व नागासाकी पर गिराने के सम्बन्ध में ब्रिटेन व कनाडा को तो अवगत करा दिया था। किन्तु सोवियत संघ ने गोपनीय रखी। अमेरिका हितों के विरुद्ध माना जाने लगा। इस घटना ने भी पूर्व व पश्चिम को दो विरोधी गुटों ने विभक्त कर दिया।

5. आपत्तिजनक पश्चिमी नीतियाँ – चर्चिल के फुल्टन भाषण, टुमेल सिद्धांत एवं मार्शल योजना को सोवियत संघ ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में उसकी भूमिका को सीमित करने के साधन माना। इस प्रकार पूर्व व पश्चिम के मध्य परस्पर शिकायतों से सोवियत संघ एवं पश्चिमी शक्तियों की विशेषताएँ अमेरिका के मध्यशीत युद्ध का 1945 में प्रादुर्भाव हुआ तथा यह शीत युद्ध संदेह एवं अतिविश्वास के वातावरण में फलीभूत होकर निरन्तर उग्रतर होता गया। दोनोंमहाशक्तियों ने एक दूसरे के विरुद्ध स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए विभिन्न समझौतों व सन्धियों के आधार पर गुटबन्दी करना आरम्भ किया। निरन्तर युद्ध की आशंका बनी रहने लगी। शस्त्र प्रतिस्पर्धा ने स्थिति को अत्यधिक विकट बना दिया। इन परिस्थितियों ने दोनों महाशक्तियों को तनाव शैथिल्य अर्थात् पीता के बारे में सोचने के लिए विवश किया।

शीतयुद्ध : समझौते एवं सन्धियाँ

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न सम्मेलन व संधियाँ की गयी जिनका उद्देश्य राष्ट्रों के मध्य मतभेदों को दूर करके आपसी सहयोग के आधार पर विश्व

का पुनर्निर्माण करना था। इनके द्वारा सार्वभौमिक शांति, सुरक्षा एवं समृद्धि के इन सम्मेलनों मे प्रमुख थे– अटलांटिक सम्मेलन (1941) लेंड–लीस समझौता (1942), कासाबियांका सम्मेलन (1943), काहिरा सम्मेलन (1943), याल्टा सम्मेलना (1945), पोट्सडैम सम्मेलन (1945)।

इन सम्मेलनों में श्नवीन अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना का निर्णय लिया गया। इस समय विश्व के नागरिकों में भारी परिवर्तन हुआ नये प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों का उदय हुआ, दो महाशक्तियाँ उभरकर सामने आई द्विध्रुवीकरण उत्पन्न हुआ ओर इसके साथ ही शीत युद्ध प्रारम्भ हो गया। शनैः शनैः युद्धकालीन समझौतों एवं संधियों की प्रासंगिकता समाप्त होने लगी तथा विश्व स्तर पर शांति स्थापित करने के लिये शीत युद्ध के दौरान नवीन संधियों एवं समझौतों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

शीत युद्ध की अवधि में दोनों महाशक्तियों (सोवियत संघ) एवं अमेरिका ने अपने–अपने गुट को सशक्त बनाने के प्रयास जारी रखें। इस हेतु अन्य राष्ट्रों के साथ मिलकर बड़ी संख्या में द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय समझौते व संधियाँ अमेरिका ने की जो साम्यवादी विरोधी राष्ट्र थे। ये संधियाँ नाटो, सीटो, सेटोप्रत्युत्तर में सोवियत संघ ने साम्यवादी देशों को वारसा समझौते के अन्तर्गत संगठित किया। सोवियत संघ तथा अमेरिका ने 60 राज्यों तथा 30 स्वाशासित राष्ट्रों के साथ संधियाँ की। इन संधियों की लोकप्रियता का ज्ञान इस तथ्य से हो सकता है कि जब संयुक्त राष्ट्र की सदस्य संख्या 59 थी तो उस समय इन दोनों ब्लाकों में 90 राज्य सम्मिलित थे। शीत युद्धकालीन प्रमुख समझौते एवं संधियाँ निम्नलिखित प्रकार से हैं–

1. उत्तरी अटलांटिक संन्धि संगठन नाटो – 4 अप्रैल 1949 ई. को अमेरिका के नेतृत्व में 12 देशों ने नाटों संधि पर हस्ताक्षर किये। जिनका उद्देश्य सोवियत संघ के बढ़ते हुये साम्यवादी प्रभाव को नियंत्रित करना था। अमेरिका नाटो के पूर्व की ओर विस्तार के पक्ष में था। किन्तु रूस ने इसे अपने हितों के विरुद्ध जानकार इसका विरोध किया। नाटो संधि के अनु० 5 में प्रावधान किया गया है कि ष्एक या एक से अधिक राज्यों पर आक्रमण की स्थिति में यह आक्रमण सभी सदस्यों पर माना जायेगा तथा नाटो सदस्य व्यक्तिगत रूप में या सामूहिक रूप में शांति तथा सुरक्षा की पुनः स्थापना करने के लिये आवश्यक कदम उठायेंगे। साथ ही इस तरह कोई भी कार्यवाही 41 उसके लिये संयुक्त राष्ट्र को भेज दी जायेगी। संधि का मुख्य उद्देश्य सोवियत संघ के सम्भावित युद्ध के लिये अमेरिकी लोगों को मानसिक रूप से तैयार करना था तथा यूरोप की प्रतिरक्षा को सुदृढ़ करना था किन्तु वास्तव में इसने शीतयुद्ध को और तीव्र कर दिया।

2. दक्षिण–पूर्वी एशिया संधि संगठन–सीटों – सीटो की स्थापना भी साम्यवाद के प्रसार को नियंत्रित करने के लिये की गयी। इसकी स्थापना का तत्कालिक कारण चीन में साम्यवादी शासन प्रणाली की स्थापना था। सन् 1954 में सम्पन्न इस सन्धि के अनु0 4 में कहा गया – ''सन्धि क्षेत्र के विरुद्ध किसी भी आक्रमण को सभी सदस्यों की शान्ति एवं सुरक्षा भंग करने की कार्यवाही समझा जायेगा। इस तरह की घटना के समय सदस्य राष्ट्र व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से शांति एवं सुरक्षा की पुनः स्थापना के लिये अनुकूल तथा आवश्यक कार्यवाही करेंगे।''

यद्यपि यह संधि दक्षिण–पूर्वी एशिया में साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए की गई किन्तु इसमें दक्षिण–पूर्वी एशिया के केवल दो ही राज्य सम्मिलित हुये। परिणामस्वरूप यह एक कमजोर संगठन सिद्ध हुआ।

3. आस्ट्रेलिया न्यूजीलैण्ड तथा संयुक्त राज्य समझौता–एंजस– एंजस भी अमेरिका द्वारा सोवियत संघ के प्रभाव को सीमित करने के उद्देश्यसे की गई एक संधि है। नाटो व सीटो के समान ही इसकी स्थापना भी साम्यवाद के भय को सामना करने के लिए की गयी। सन् 1951 में सम्पन्न इस सन्धि के अनु. 4 में प्रत्येक सदस्य यह स्वीकार करता है कि प्रशांत क्षेत्र में किसी कहा गया कि भी सदस्य पर सशस्त्र आक्रमण उसकी अपनी शांति व सुरक्षा के लिये भयानक होगा तथा इस साझे खतरे का सामना करने के लिये वह अपनी संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार कार्य करेगा। किसी भी एक राज्य पर सशस्त हमले को सभी राज्यों पर आक्रमण समझा जायेगा तथा इसीलिये सामूहिक शक्ति द्वारा इसका सामना किया जायेगा।

आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड का मानना था कि यह समझौता जापान सुरक्षा हेतु सम्पन्न किया गया है। किन्तु वास्तव में अमेरिका इस समझौते द्वारा प्रशांत क्षेत्र में साम्यवाद के प्रसार को रोकना चाहता था।

4. अमेरिकी राज्यों का संगठन – ओ.ए.एस. का प्रादुर्भाव 1889 ई. में हुआ था किन्तु 1948 के बाद यह एक विस्तृत क्षेत्रीय संगठन के रूप में विकसित हो गया। यह अमेरिकी महाद्वीप की क्षेत्रीय व्यवस्था है। ओ.ए.एस. चार्टर के अनुसार–''किसी भी अमेरिकी राज्य के विरुद्ध किसी राज्य द्वारा आक्रमण सारे अमेरिकी राज्यों पर आक्रमण समझा जायेगा तथा इसीलिये इसका सामना अमेरिकी राज्यों के संगठन ओ.ए.एस. के सभी राज्यों द्वारा लागू किया जायेगा।''

इस संगठन का प्रयोग भी अमेरिका ने शीत युद्ध के दौरान सोवियत संघ के विरुद्ध सुरक्षात्मक कवच के रूप में किया।

5. वारसा समझौता (Warsaw Pact) – सोवियत संघ की शक्ति को सीमित करने के लिये तथा साम्यवाद के प्रसार को नियंत्रित करने के लिये अमेरिका ने नाटो, सीटो, और एंजस आदि समझौते व संधियाँ की प्रतिक्रियास्वरूप सोवियत संघ रूस ने वारसा समझौता सभी समजावादी राष्ट्रों के साथ मिलकर किया। मई 1955 में यह समझौता सोवियत संघ, पोलैण्ड, हंगरी, चौकोस्लोवाकिया, रुमानिया, पूर्वी जर्मनी, बुल्गारिया एवं अल्बानिया के मध्य सम्पन्न हुआ। इसकी स्थापना नाटों के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में की गयी। इस समझौते के अनु. 4 में कहा गया है–

''यूरोप में इस संधि के एक 41 एक से अधिक सदस्यों के विरुद्ध एक 41 अधिक राज्यों के द्वारा सशक्त आक्रमण की स्थिति में, संधि का प्रत्येक सदस्य राज्य व्यक्तिगत या सामूहिक आत्मरक्षा के अधिकार के प्रयोग के लिये ऐसे आक्रमण के शिकार राज्य या राज्यों को व्यक्गित या संधि के सदस्यों के साथ मिलकर प्रत्येक तरह के साधनों से जो आवश्यक समझे जायेगें, यहाँ तक सशस्त्र सेना के प्रयोग तक की सहायता देगें। सदस्य राज्यों से यह आशा की जाती है कि वे अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को बनाये रखने के लिये तत्काल ही संयुक्त उपाय करेगें।"

वरसा समझौता 1955 से 1990 तक अस्तित्व में रहा। तत्पश्चात् रूस में पेरे स्त्रोइका एवं ग्लासनोत के अस्तित्व में आने पर पूर्वी यूरोप के साम्यवादी राज्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन आया जिसके कारण उन्होंने वारसा समझौते को मानने से इंकार कर दिया। अप्रैल 1991 में वारसा समझौता समाप्त हो गया। ये सभीसमझौते एवं संधियाँ अमेरिका व सोवियत संघ एक–दूसरे के प्रभाव को कम करने की दृष्टिकोण से किये।

स्न् 1970–80 का दशक अमेरिका व सोवियत संघ के मध्य दीता या तनाव शैथिल्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की विशेषता बना। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में मतभेदों को समाप्त करने के लिये निम्न समझौते व संधियाँ विभिन्न राष्ट्रों के मध्य सम्पन्न हुये।

1.1970 ई. का मास्को बॉन समझौता : 1970 में सम्पन्न मॉस्को बॉन समझौते के द्वारा जर्मनी के यथापूर्व स्थिति को स्वीकार कर लिया गया। एक पारस्परिक आक्रमण समझौता करने का भी निर्णय किया गया। इससे जर्मनी में शीत युद्ध के तनावों में कमी आई।

2. 1971 ई. का बर्लिन समझौता : 3 सितम्बर 1971 को अमेरिका, सोवियत संघ, ब्रिटेन तथा फ्रांस ने बर्लिन पर एक चार शक्ति समझौता किया। इसमें भी यथापूर्व स्थिति को बनाये रखने के लिये निर्णय लिया गया। साथ ही पश्चिमी बर्लिन के लोगों को पूर्वी बर्लिन तथा जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक जाने की आज्ञा देना भी निश्चित हुआ।

3. 1972 ई. का पूर्वी जर्मनी– पश्चिमी जर्मनी समझौतारू 8 नवम्बर 1971 को हुए एक समझौते के द्वारा पूर्वी जर्मनी व पश्चिमी जर्मनी ने परस्पर सहयोग करना एवं एक दूसरे को मान्यता देना स्वीकार कर लिया। दोनों ने शक्ति का प्रयोग करने का निर्णय भी ले लिया। इस संधि से शीत युद्ध के युग का वास्तविक रूप से अंत हो गया। ष.

4. 1972 ई. का कोरिया समझौता – 4 जुलाई 1972 के समझौते के द्वारा उत्तरी कोरिया व दक्षिण कोरिया ने अपने सम्बंधों को सामान्य बनाने के लिये कार्य करना स्वीकार कर लिया।

5. 1975 ई. का हेलसिंकी समझौता – अगस्त 1975 में यूरोप तथा अमेरिका के 35 राज्यों के अध्यक्षों ने हेलसिकी में एक समझौता किया जिसमें उनके आपसी सम्बन्धों को व्यवस्थित करने के लिए एक आचार संहिता बनाई गई। इसमें 34 यूरोपीय राष्ट्रों में से 33 राष्ट्रों ने (अल्बानिया को छोड़कर) अमेरिका तथा कनाडा के साथ मिलकर राज्यों की साम्यवादी राजनीतिक अव्यवस्थाओं को ध्यान में न रखते हुए परस्पर सहयोग के लिए कार्य करना स्वीकार किया प्रत्येक राज्य की प्रभुसत्ता का सम्मान करना, विवादों का शान्तिपूर्ण निपटारा करना, शक्ति की धमकी न देना, किसी भी राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना तथा राष्ट्रों के मध्य विश्वास उत्पन्न करना ऐसे कुछ सिद्धांत थे, जिनकापालन सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले सभी राज्यों को करना था। यह समझौता यूरोप में शीत युद्ध के युग को समाप्त कर सकता था। इससे यूरोपीय राष्ट्रों के मध्य शान्तिपूर्ण एवं सद्भावनापूर्ण सम्बन्धों की स्थापना हुई।

हेलसिंकी की भावना को सुदृढ़ करने के लिए 1977 ई. में तृतीय यूरोपीय सुरक्षा सम्मेलनश बेलग्रेड में हुआ।

6. 1979 ई. का कैम्प डेविड समझौता – 26 मार्च 1979 को इजरायल एवं मिस्र के मध्य सम्पन्न इस समझौते के द्वारा मध्य–पूर्व में संघर्ष को कम करने का प्रयास किया गया।

7. आई.एन.एफ. सन्धि – 1985 ई. में सम्पन्न इस सन्धि के अन्तर्गत अमेरिका तथा सोवियत संघ दोनों ने अपनी–अपनी निगरानी में यूरोप में लगाये गये मध्य दूरी के प्रक्षेपात्रों को नष्ट करने के लिए एक समझौता किया। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बधों में सकारात्मक परिवर्तन आये जैसे की अफगानिस्तान से सोवियत सेनाओं का हटना ईरान–इरका युद्ध की समाप्ति, शस्त्र कटौती, रूस–चीन, कोरियाई एकता, फिलीस्तीन द्वारा इजराइयल को मान्यता आदि। इन विभिन्न समझौता एवं सन्धियों के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में उत्पन्न तनाव में एक बड़ी सीमा तक कमी आई। विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के मध्य विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाया जा सका। जहाँ तक अमेरिका व सोवियत संघ का प्रश्न था तो ये विभिन्न राष्ट्र इन दोनों महाशक्तियों के खेमों से ही सम्बन्धित थे। अतः अमेरिका सोवियत संघ के मध्य तनाव– शौथिल्य स्वाभाविक था।

शीत युद्ध : तनाव एवं प्रतिद्वन्द्वितायें

शीत युद्ध का इतिहास – विभिन्न तनावों एवं प्रतिद्वन्द्विताओं के आधार पर शीत युद्ध के इतिहास को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. शीत युद्ध का प्रथम दौर

2. शीत युद्ध का द्वितीय दौर

3. शीत युद्ध का तृतीय दौर

4. शीत युद्ध का चतुर्थ दौर

शीत युद्ध का प्रथम दौर (1947–53) – शीत युद्ध के प्रथम दौर में यूरोप विशेषतया जर्मनी शीत युद्ध का केन्द्र बना रहा क्योंकि दोनों ही महाशक्तियाँ इस क्षेत्र में अपना–अपना प्रभाव दिखाने के लिये प्रयत्नीशील थी जर्मनी के अतिरिक्त इस काल के अन्य मामले निम्नवत् थे–

1. जर्मनी का मामला रू सोवियत संघ तथा अमेरिका जर्मनी युद्ध में अपने–अपने क्षेत्रों में प्रभाव स्थापित कर सके। इस उद्देश्य से जर्मनी को दो भागों में विभक्त लोकतांत्रिक गणतन्त्र। अमेरिका ने सोवियत प्रभाव को सीमित करने के लिये मार्शल योजना रखी। इसी प्रकार अमेरिका की संगठित प्रचार युद्ध नीति का उत्तर सोवियत संघ ने कोमिनफार्म का संगठन करके दिया।

2. बर्लिन समस्या रू पश्चिमी शक्तियों द्वारा बर्लिन में नई मुद्रा प्रारम्भ करने के प्रत्युत्तर में सोवियत संघ ने कॉमीकान की नीति प्रारम्भ की। इसी प्रकार अमेरिका की संगठित प्रचार–युद्ध नीति का उत्तर सांवियत संघ ने लोमिनफार्म का संगठन करके दिया। यद्यपि मई 1948 तक सोवियत संघ नाकेबन्दी उठाने के लिये सहमत हो गया किन्तु तब तक मतभेद अत्यधिक गहरे हो चुके थे।

3. नाटो की स्थापना – बर्लिन की समस्या पर दोनों महाशक्तियों के सम्बन्धअत्यन्त कटु हो गये तथा अमेरिका एवं पश्चिमी शक्तियों ने 4 अप्रैल, 1949 को नाटो की स्थापना की। तत्पश्चात् 21 सितम्बर 1949 को जर्मन संघीय गणतन्त्र (एफ0आर०जी०) की स्थापना की। प्रतिक्रिया स्वरूप सोवियत संघ ने 7 अक्टूबर, 1949 को पूर्वी जर्मनी के अपने अधिकृत क्षेत्र को जर्मन लोकतांत्रिक गणतन्त्र (जी.डी.आर.) घोषित कर दिया।

अमेरिका ने साम्यवाद पर नियन्त्रण स्थापित कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने का निश्चय कर लिया था।

4. कोरिया की समस्या – सन् 1950 में उत्तरी कोरिया व दक्षिणी कोरिया में युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसी दौरान संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने श्शान्ति के लिये एक हो जाओश के प्रस्ताव को कार्य रूप दिया। दोनों अपनी–अपनी शक्ति एवं प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने में संलग्न रहे। परमाणु बम का रहस्य पता लगाने के बादसोवियत संघ भी शस्त्र दौड़ में सम्मिलित हो गया। इस प्रकार निःशस्त्रीकरण के प्रयास विफल हो गये तथा शीत युद्ध और भी तीव्र हो गया।

5. जापान का मामला – जापान के साथ सन्धि पर विचार करने एवं उसे सहमति देने के लिये अमेरिका ने सितम्बर 1951 में सान फ्रांसिस्को सम्मेलन बुलाने का निर्णय किया जिसका सोवियत संघ ने विरोध किया।

सन् 1947 ई. से 1953 ई. तक की उपरोक्त घटनाओं के कारण सोवियत संघ तथा अमेरिका के मध्य शीत युद्ध चलता रहा।

शीत युद्ध का द्वितीय दौर (1953–63) – इस दौर में अमेरिका एवं सोवियत संघ के नेतृत्व में परिवर्तन आ चुका था। उनकी विदेश नीति के प्रमुख सिद्धांत थे– साम्यवाद पर नियंत्रणश तथा बड़े पैमाने पर प्रतिशोध। परिणामतः शीतयुद्ध की स्थिति यथावत कायम रही।

1. परमाणु अस्त्र दौड़ – परमाणु शस्त्रों की प्रतिद्वन्द्विता ने शीतयुद्ध की स्थिति को भयावह बना दिया। जनवरी 1956 में सोवियत प्रधानमंत्री बुल्गानिन के श्सोवियत संघ अमेरिका सन्धि के प्रस्ताव को भी पश्चिमी देशों ने अस्वीकृत कर दिया।

2. हिन्द–चीन का ग्रह युद्ध – सन् 1954 में हिन्द–चीन में होचिन–मिन की सेनाओं तथा फ्रांस की सेनाओं के मध्य गम्भीर युद्ध प्रारम्भ हो गया। जनवरी 1956 में सोवियत प्रधानमंत्री बुल्गानिन के सोवियत संघ अमेरिका का मानना था कि वियतनाम में साम्यवाद की विजय दक्षिणी–पूर्वी एरिया में अमेरिका की प्रतिष्ठा को खतरे में डाल देगी। सन् 1953 से. 1970 ई. के मध्य वियतनाम युद्ध अमेरिका व सोवियत संघ के भारी तनाव का कारण रहा।

3. सीटो व वारसा पैक्ट – अमेरिका ने दक्षिणी–पूर्वी एशिया एवं मध्य–पूर्व में साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिये क्रमशः सीटो व मीडो का संगठन किया। इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था दो गुटों में विभक्त हो गई तथा इस द्विध्रुवीकरण ने शीत युद्ध को और भी बढ़ा दिया।

4. स्वेज समस्या – स्वेज नहर पर ऐंग्लो–फ्रेंच–यहूदी आक्रमण पर अमेरिका द्वारा अपील की गई क्योंकि उसे भय था कि इस युद्ध के कारण कहीं मिस्र व अन्य मुस्लिम देश सोवियत संघ की सहायता लेने के लिये विवश न हो जाये। किन्तु मध्य–पूर्व अमेरिका व सोवियत संघ के लिये युद्ध का बना रहा।

5. आईजनहावर सिद्धांत – सन् 1957 में अमेरिकाकांग्रेस ने आईजनहावर सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसके अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया कि वह साम्यवाद के खतरे को नियन्त्रित करने के लिये रव्रश्वेच ने अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को सुखद बनाने हेतु आईजनहावर से महत्वपूर्ण बातचीत की।

6. पेरिस शिखर सम्मेलन की सफलता – अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में उस समय तनाव कम होने की आशा की जाने लगी जबकि अमेरिका सावियत संघ, ब्रिटेन व फ्रांस के मध्य 1960 में पेरिस शिखर सम्मेलन बुलाने के लिये एक समझौता हुआ किन्तु दुर्भाग्यवश 1 मई, 1960 को यू–2 विमान दुर्घटना हो गई। इन परिस्थितियों में पेरिस सम्मेलन में कोई निर्णय नहीं किया जा सका।

7. बर्लिन दीवार संकट – सन् 1960 से 1963 तक कैनेडी अमेरिका के राष्ट्रपति रहे। दोनों ने मोर्चों पर अपने–अपने टैंक खड़े कर दिये जिससे युद्ध सम्भावित हो गया।

8. क्यूबा संकट – अक्टुबर 1962 में क्यूबा संकट उस समय उत्पन्न हुआ जबकि सोवियत संघ ने क्यूबा में एक मिसाइल अड्डा बनाने का निर्णय किया। अतः सन् 1963 के पश्चात् दोनो महाशक्तियों ने परस्पर तनावों को कम करके शान्तिपूर्ण एवं सहयोगपूर्ण सम्बन्ध बनाने का प्रयास किये किन्तु पूर्णतया शान्ति स्थापित न हो सकी।

शीत युद्ध का तृतीय दौर (1963–70) – शीत युद्ध के तृतीय दौर में दोनों महाशक्तियों के मध्य तनाव के मुद्दे तो रहे किन्तु साथ ही कुछ सकारात्मक परिवर्तन भी हुये–

1. नेतृत्व परिवर्तन – इस समय अमेरिका एवं सोवियत संघ में नेतृत्व परिवर्तन हो चुका था। इसी प्रकार सोवियत संघ में अक्टूबर 1964 में सुश्वेच के पश्चात् बेझनेव तथा कोसीगिन सत्ता में आये।

2. भारत पाक युद्ध – सन् 1965 में भारत–पाक युद्ध प्रारम्भ हो गया जिसमें सोवियत संघ ने मध्यस्थता की भूमिका निभाई लेकिन अमेरिका ने इसे पसन्द ब्रेझनेव तथा कोसीगिन सत्ता में आये।

3. अरब इजरायल युद्ध –सन् 1967 में अरब–इजरायल युद्ध प्रारम्भ होने पर एक बार पुनः मध्य–पूर्व में अमेरिका व सोयित संघ के मध्य तनाव पर दोनों देशों ने पारस्परिक सम्बन्धों को मधुर बनाने के प्रयास भी जारी रखे। ये प्रयास निम्नलिखित थे–

1. 23–26 जून 1967 को सम्पन्न ग्लासबों शिखर सम्मेलन में दोनों देशों के नेताओं ने वियतनाम तथा मध्य–पूर्व की समस्याओं पर विचारों का? आदान–प्रदान किया। विश्व की अन्य समस्याओं तथा पारस्परिक सम्बन्धों की अन्य समस्याओं पर भी विचार–विमर्श हुआ।

2. परमाणु अप्रसार सन्धि (1968) ने अमेरिका व सोवियत संघ के सम्बन्धों को मधुर बनाने में सहायता दी।

3. वियतनाम पर बमबारी न करने के अमेरिका के निर्णय ने तनाव को और भी कम कर दिया।

इन प्रयासों के बावजूद कुछ घटनाओं ने शीत युद्ध की स्थिति को बनाये रखा।

1. बर्लिन दीवार संकट – सन् 1969 में बर्लिन एक बार पुनः सोवियत संघ व अमेरिका के मध्य शीत युद्ध का कारण बना। सोवियत संघ के द्वारा समर्थित जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ने बर्लिन की नाकेबंदी कर दी, किन्तु जर्मन संघीय गणतंत्र ने चुनाव मण्डल के सदस्यों को हवाई जहाजों द्वारा बर्लिन पहुँचाकर शान्तिपूर्ण ढंग से चुनाव सम्पन्न कराये।

इस प्रकार 1963 ई. से 1970 ई. तक के काल में भी दोनों महाशक्तियों के मध्य शीतयुद्ध बना रहा।

सन् 1970 से 1980 के मध्य अमेरिका व सोवियत सम्बन्धों की प्रमुख विशेषता दीतां या तनाव शैथिल्य था। किन्तु दुर्भाग्यवश 27 दिसम्बर 1979 को अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप से दीतां को धक्का लगा तथा एक नये शीत युद्ध का जन्म हुआ।

शीत युद्ध का चतुर्थ दौर (1980–87) – इस काल में निम्नलिखित घटनाओं ने शीत युद्ध को पुनः प्रारम्भ किया–

1. अमेरिका में नेतृत्व परिवर्तन रू अमेरिका का राजनीतिक नेतृत्व इस समय राष्ट्रपति रोगन के हाथों में था जिन्होंने अपनी विदेश नीति में अलिखित परिवर्तन किये– (1) अपनी प्रथम महाशक्ति की स्थिति पुनः प्राप्त करने का फैसला। 2) दीतां का मात्र विकल्प युद्ध है। विक्सन किसिंगर के इस विचार को अस्वीकृत करने का निर्णय किया गया। (3) दीतां के विचार का त्याग किया गया। रीगन प्रशासन का यह भी आरोप था कि सोवियत संघ का व्यवहार अमेरिका के हितों एवं दीतां के उद्देश्यों के प्रति अनुत्तरदायित्वपूर्ण है।

2. अमेरिका के पू. यूरोप व चीन के साथ सम्बन्ध– सन् 1970 के दशक में अमेरिका ने चीन के साथ सम्बन्ध स्थापित करके सोवियत संघ व चीन के मध्य की खाई को चौड़ा करने का प्रयास किया।

अमेरिका ने एल–सल्वाडोर, निकारागुआ तथा ग्रेनाडा में भी अपना प्रभाव बढ़ाने एवं साम्यवाद को नियंत्रित करने का प्रयास किये।

3. अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप – अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप से अमेरिका को विश्वास हो गया। इस कृत्य को अमेरिका ने दीतां तोड़ने का प्रत्यक्ष प्रमाण भी कहा।

4. सोवियत संघ के विरुद्ध अमेरिकी नीतियाँ –सोवियत प्रभाव को नियंत्रित करने के उद्देश्य से अमेरिका द्वारा निम्नलिखित नीतियाँ निर्धारित की गई–

1. पश्चिमी एशिया में सोवियत संघ की चुनौती के विरुद्ध पाकिस्तान को शस्त्र देना तथा इसे अपने अन्तिम सीमा राज्य के रूप में सुदृढ़ करना।

2. डिभागो गार्शिया को नौ–सैनिक अड्डा बनाना।

3. SALT II समझौते को क्रियान्वित करना।

4. कोनिया व सोमानिया को बड़े पैमाने पर सहायता देना। बड़े

5. हिन्द महासागर में अपनी शक्ति एवं प्रभाव में वृद्धि करना।

5. अमेरिका के विरुद्ध सोवियत नीतियाँ – सोवियत संघ द्वारा भी कुछ नीतियाँ लागू की गई जो कि अमेरिका व सोवियत संघ के मध्य विरोध का कारण बनीं।

1. अफगानिस्तान में हस्तक्षेप एवं वहाँ रहने का सोवियत निर्णय।

2. अंगोला व इथियोपिया में सोवियत संघ द्वारा उत्साहित क्यूबियों की भूमिका।

3. क्यूबा में सोवियत ब्रिगेड की उपस्थिति।

4. सोवियत संघ द्वारा अफ्रीका में अपने सैनिक आधारों को सुदृढ़ करना।

5. सोवियत संघ का हिन्द महासागर में बढ़ता प्रभाव क्षेत्र।

अमेरिका सोवियतसंघ की इन नीतियों को चुनौती के रूप में स्वीकार करता है। – इन सभी घटनाओं के अतिरिक्त ईरान–इराक युद्ध निःशस्त्रीकरण मुद्दों की असफलता शिखर सम्मेलनों की असफलता, शस्त्र–प्रतिद्वन्द्विता, पाकिस्तान में अमेरिका द्वारा किया गया व्यापक सैन्यीकरण, अफगानिस्तान में सोवियत संघ का निरन्तर हस्तक्षेप आदि घटनाओं ने भी शीत युद्ध को जीवित रखा। इस सन्धि के तहत दोनों देशों ने अपनी–अपनी निगरानी में यूरोप में लगाये गये मध्यम दूरी के प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट करने का समझौता किया। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विवादास्पद मुद्दे शान्तिपूर्ण ढंग से हल किये जा सके और इसके साथ ही विश्व राजनीति में शीत युद्ध का युग प्रायः समाप्त ही हो गया।

अध्याय 12

गुट निरपेक्ष आन्दोलन और तृतीय विश्व

गुटदृनिरपेक्षता रू अर्थ एवं परिभाषायें (Non-aligment Meaning and Definitions)

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में गुट निरपेक्षता की नीति का उदय द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् हुआ। वर्तमान में यह विश्व की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण अवधारणा है जिसमें विश्व के लगभग 2 / 3 राज्य सम्मिलित हैं। पश्चिमी विद्वानों द्वारा इसकी व्याख्या श्तटस्थतावादश (Neutralism) के आधार पर की गई। जार्ज स्वार्जनवर्गर (Geerge Sehwargenberger)द्वारा गुट निरपेक्षता के लिए अग्रलिखित छः शब्दों का उल्लेख किया गया– तटस्थता, तटस्थीकरण, गैर–वचनबद्धता, अलगावाद, एकपक्षतावाद, एवं निर्लिप्तता किन्तु इनमें से कोई भी शब्द गुट निरपेक्षता की सम्पूर्ण एवं उचित परिभाषा के उपयुक्त नहीं हैं।

गुट–निरपेक्षता का अर्थ एक ऐसी विदेश नीति से है जिसमें शीत युद्ध एवं सैनिक संधियों से प्रथक रहते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में राष्ट्रीय हितों तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा की दृष्टि से सक्रिय भागीदारी होती है। गुट निरपेक्ष शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम श्जार्ज लिस्काश ने किया तथा इस नीति को सर्वप्रथम व्यवहारिक रूप देने का श्रेय भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को प्राप्त है।

पं. नेहरू के शब्दों में ष्गुट निरपेक्षता से तात्पर्य है एक राष्ट्र द्वारा सैनिक गुटों से अपने आपको अलग रखने का प्रयत्न। इसका अर्थ है जहाँ तक सम्भव हो समस्याओं को सैन्य दृ ष्टिकोण से न देखना। यद्यपि कभी–कभी ऐसा करना भी पड़ता है किन्तु हमारा स्वतंत्र दृ ष्टिकोण होना चाहिए तथा समस्त देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होने चाहिये।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि गुट निरपेक्षता की नीति विभिन्न गुटों से तटस्थ रहते हुए भी राष्ट्रीय हित के अनुसार स्वतंत्र रूप से न्याय पक्ष का समर्थन करती है। यह एक ऐसी व्यवहारिक नीति है जो विश्व शान्ति तथा सह अस्तित्व के सिद्धांत में विश्वास रखती है। हर प्रकार की – आक्रमण संधि से दूर रहना शीत युद्ध से स्वयं को प्रथक रखना तथा राष्ट्र हित को ध्यान में रखते हुए न्यायोचित रखना तथा राष्ट्र हित को ध्यान में रखते हुए न्यायोचित पक्ष में अपनी विदेश नीति का संचालन करना।

गुट–निरपेक्षता विशेषतायें (Features of Non-Alignment) – गुट निरपेक्षता की स्वरूप को इसकी विशेषताओं के आधार पर समझा जा सकता है, जो निम्नलिखित है–

1. सैनिक/सुरक्षा सन्धियों का विरोध(Opposition to Military/SecurityAlliances) गुट–निरपेक्षता की नीति प्रत्येक प्रकार की सैनिक ६ सुरक्षा संधियों का विरोध करती हैं क्योंकि इस प्रकार की संधियाँ तनाव–उत्पत्ति का ही कारण होती हैं। गुट–निरपेक्षता की नीति के समर्थन इन संधियों को विश्व शान्ति के लिये खतरा मानते हैं इस प्रकार गुट निरपेक्षता की नीति की एक प्रमुख विशेषता है। गुट बन्दियों एवं सैनिक/सुरक्षा सन्धियों से

दूर रहना। पं. नेहरू के शब्दो में ''जब हम यह कहते हैं कि हम गुट निरपेक्षता नीति पर चलते हैं तो स्पष्टता इसका अर्थ है सैनिक गुटोंसे निरपेक्षता।''

2. पंचशील सिद्धांत गुट निरपेक्षता की आधार शिला (Panchsheel is the basis on Non-Alignment) – सन् 1961 में गुट निरपेक्षता की नीति के तीन कर्णधारों– पं० नेहरू नासिर तथा मार्शल टीटी ने इसके पांच आधार स्वीकार किये –

1. सदस्य देश स्वतंत्र नीति पर चलता हो।

2. सदस्य देश उपनिवेशवाद का विरोध करता हो।

3. सदस्य देश किसी सैनिक गुट का सदस्य न हो।

4. सदस्य देश ने किसी बड़ी शक्ति के साथ द्विपक्षीय समझौता न किया हो।

5. सदस्य देशने किसी बड़ी शक्ति को अपने क्षेत्र में सैनिक अड्डा बनाने की स्वीकृति न दी हो।

गुट–निरपेक्षता की जो बुनियाद भारत ने 1946–47 में रखी थी वह समय के साथ और भी मजबूत बन चुकी है। पं. नेहरू के ये शब्द आज भी इस नीति के सन्दर्भ में सजीव हैं– ष्जहाँ स्वतंत्रता के लिए खतरा उपस्थित हो।

3. शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्वतथा अहस्तक्षेप (Pcaceful co-existence and Non-interfence) – गुट–निरपेक्षता की नीति यह स्वीकार करती है कि शीत युद्ध व युद्ध की तैयारी द्वारा शांति कायम करने के प्रयत्न अनुचित तथा हानिकारक है तथा इन्हें शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व तथा अहस्तक्षेप के सिद्धांत में परिवर्तित कर देना चाहिए।

पं. नेहरू ने भी शान्पूर्णि सह–अस्तित्व एवं अहस्तक्षेप की नीति का समर्थन करते हुए कहा था कि ''भारत को उन समूहों की शान्ति राजनीति से दूर रहना चाहिए।''

4. राष्ट्रीय हित प्राप्ति का साधन (Means toAchieve National Interist) – प्रत्येक देश की विदेश नीति का लक्ष्य राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति होती है। इस सन्दर्भ में गुट–निरपेक्ष राष्ट्रों को शक्तिशाली होने का अधिकार है। इन राष्ट्रों की मान्यता है कि राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति के लिए विदेशी सम्बन्धों में कार्य की स्वतंत्रता आवश्यक है।

5. शक्ति–राजनीति विरोधी अवधारणा (ConceptAgainst to PowerPolitics) –गुट–निरपेक्षता की अवधारणा के अनुसार सभी राष्ट्रों को शक्तिशाली होने का अधिकार है। यह शक्ति के आधार पर स्थानीय क्षेत्रीय महाद्वीपीय एवं विश्वव्यापी प्रभुत्व स्थापना की विरोध करती है।

6. स्वतंत्र विदेश नीति का समर्थन (Support for Independent Fareign Plolicy) – गुट–निरपेक्षता की नीति का प्रादुर्भाव नवीन राज्यों द्वारा महाशक्तियों एवं विकसित देशों के सम्भावित दबावों से अपनी विदेश नीतियों का स्वतंत्र रखने की इच्छा के कारण किया गया है।

7. शीतयुद्ध का विरोध (Opposition of Cold War) – जिस समय गुट निरपेक्षता का प्रादुर्भाव हुआ अमेरिका व सोवियत संघ के मध्य शीतयुद्ध तीव्रता पर था। दोनों महाशक्तियों ने नवोदित राष्ट्रों को अपने–अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया।

8. क्रियाशीलता की नीति (Policly ofAction) – कई बार गुट निरपेक्षता का अर्थ अलगाववाद अथवा अक्रिया शीलता से लिया जाता है। किन्तु यह विचार भ्रामक है। इसका अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में पूर्ण भागीदारी एवं उत्तरदायित्व की समर्थक है। इसका अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय मामलों व समस्याओं पर स्वतंत्रतापूर्वक विचार प्रकट करना एवं अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा में पूर्ण सहयोग प्रदान करना है।

गुट निरपेक्ष और तृतीय विश्व

गुट–निरपेक्ष आन्दोलन का प्रारम्भ एक समान विचारधारा वाले देशों के द्वारा शीतयुद्ध शक्ति राजनीति एवं सैनिक सन्धियों के विरोध में किया गया था। किन्तु वर्तमान में यह जाति भेद विरोध, शस्त्र दौड़ विरोधी एवं नव–उपनिवेशवाद विरोधी, तृतीय विश्व का आन्दोलन बन गया है। तृतीय विश्व के देश सभी देशों के लिए समान व उचित आर्थिक व्यवस्था, विश्व में स्थाई शान्ति व सुरक्षा तथा अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्क्रियाओं में पूर्ण भागीदारी के पक्षधर है। इस प्रकार में गुट–निरपेक्षता की नीति अब तटस्थता की नीति मात्र नहीं रह गई है। वरन् विश्व राजनीति में गतिशील भागीदारी इसकी प्रमुख विशेषता हो गई है। तृतीय विश्व का यह आन्दोलन पक्षपात रहित ढंग से अपने सिद्धांत पर दृढ़ है।

वर्तमान में श्तृतीय विश्वश का कोई भी देश ऐसा नही होगा जो गुट–निरपेक्ष आन्दोलन का सदस्य नही है। प्रारम्भ में गुट निरपेक्ष देशों की सदस्य संख्या 25 थी जो 1998 में 116 तक पहुँच गई। नाम (NAM) तृतीय विश्व की एकता का प्रतीक है। इस आन्दोलन के माध्यम से तृतीय विश्व के राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारों को प्रधान शक्तियों से प्राप्त करने के लिये संघर्ष किया जा रहा है।

गुट–निरपेक्ष आन्दोलन ने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद एवं जातीय भेदभाव को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गुट निरपेक्ष आन्दोलन तृतीय विश्व को अधिकारों को उत्तर दक्षिण वार्ताश एवं दक्षिण – दक्षिण सहयोग के द्वारा प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है। नाम (NAM) विश्व में आर्थिक सम्बन्धों की पूर्ण संरचना करने के पक्ष में एक व्यापक एवं प्रभावशाली आन्दोलन है।

सितम्बर 1989 ई. के बेलग्रेड शिखर सम्मेलन में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने दक्षिण–दक्षिण सहयोग का आह्वान करते हुए कहा कि हमें दक्षिण–दक्षिण सहयोग के अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों में वर्तमान सम्बन्धों की अपेक्षा और अधिक ठोस रूप देना चाहिए। दक्षिण को अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने के लिये चुनौतियों का सामना करना होगा। दक्षिण के हम लोगों में ऐसी बहुत सी बातें हैं जो विकास की प्रक्रिया तेज करने में निर्धनता उन्मूलन में और हम लोगों को समृद्ध बनाने में सहायता करती है। दक्षिण में विकास के समान उद्देश्यों के लिये एक–दूसरे के बारे में अधिक जानकारी और संसाधनों को जुटाने हेतु राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी है।

राजीव गांधी ने अपने सुझाव प्रस्तुत करते हुए कहा दक्षिण–दक्षिण सहयोग को आवश्यक प्रोत्साहन देने तथा हमारे पारस्परिक दीर्घ कालिक हितों को आवश्यक प्रोत्साहन देने तथा हमारे पारस्परिक दीर्घकालिक हितों के लिये अस्थायी बलिदानों को स्वीकार करने हेतु एक उच्च कोटि की राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। हमें दक्षिण–दक्षिण सहयोग के प्रोत्साहन के लिये संस्थागत संरचना को सुव्यवस्थित करना चाहिए। 177 के ग्रुप तथा गुट–निरपेक्ष आन्दोलन दोनो ही आर्थिक तकनीकी सहयोग के कार्यक्रम हैं। इन कार्यक्रमों को तर्क संगत बनाने के साथ ही इनमें परस्पर समन्वय स्थापित करना चाहिए। व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए एक दूसरे को प्राथमिकता शुल्क देते हैं।

इस आन्दोलन का जन्म यद्यपि प्रारम्भ में शीत युद्ध व गुट राजनीति काविरोध करने के लिए हुआ था। किन्तु शनैः शनैः यह आन्दोलन विकासशील देशों,तृतीय विश्व के देशों एवं नवोदित देशों का आन्दोलन बन गया। तथापि यह एक अभूतपूर्व अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में लोकप्रिय है।

अध्याय–13

संयुक्त राष्ट्रसंघ और विश्वशान्ति

संयुक्त राष्ट्र संघ

उद्देश्य एवं संगठनरू संयुक्त राष्ट्रसंघ के देशों की संविधान की प्रस्तावना में निम्न प्रकार व्यक्त किया गया है। हम संयुक्त राष्ट्र संघ के लोगों का यह निश्चय है कि हम भावी पीढ़ियों को युद्ध की भयंकरता से जिसने हमारे समय में दो यह में दो बार समस्त मानव जाति को अत्यधिक पीड़ा पहुँचाई, बचाने का प्रयास करेंगे। हम मानव के मौलिक अधिकारों, मानव व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा तथा में स्त्री तथा पुरुष के समान अधिकारों में तथा छोटे व बड़े राष्ट्रों की मूल्य समानता में विश्वास प्रकट करते हैं। अतएव ऐसी परिस्थितियों को स्थापित करने के उद्देश्य में जिनमें न्याय सन्धियों और अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अन्य साधनों के प्रति सम्मान की भावनाओं को स्थायी रूप प्रदान किया जा सके। सामाजिक प्रगति और अच्छे जीवन स्तर को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से तथा इन उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सहिष्णुता और शान्तिपूर्ण जीवन का व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए तथा अपनी शक्तियों को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा की स्थापना के लिये प्रयुक्त करने के लिये यह प्रतिज्ञा करते हैं कि हम एक दूसरे के साथ इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सदैव सहयोग प्रदान करेंगे। इसलिये हमारी सरकारों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के इस घोषणा पत्र को स्वीकार किया है और हम एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना करते हैं। जो संयुक्त राष्ट्र संघ के इस घोषणा पत्र को स्वीकार किया है। और हम एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना करते हैं। जो संयुक्त राष्ट्र संघ के नाम से प्रसिद्ध होगा। चार्टर के अनुच्छेद 1 के अनुसार संघ का प्रमुख उद्देश्य विश्व में शान्ति तथा सुरक्षा की स्थापना करना है। अनुच्छेद 111 में संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों की विशद व्याख्या की गयी है।

मानव जाति की भावी संततियों को युद्ध की विभीषिका से मुक्त करना अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बनाये रखना अन्तर्राष्ट्रीय विवादों काशान्तिपूर्ण उपयों से समाधान करना। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या मानवता, अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का सहयोग प्राप्त करना। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(1) उत्तरदायित्वों का निर्वाह – संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धांतों का वर्णन चार्टर की द्वितीय धारा में है– सदस्य राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता ग्रहण कर इसको लाभों तथा अधिकारों को गारन्टी के साथ प्राप्त करने के लिए अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करेगें।

(2) समानता का अधिकार –इसकें समस्त सदस्य राष्ट्रों को समानता का अधिकार दिया जायेगा, किन्तु सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों की इस संस्था के अन्य सदस्यों की अपेक्षा अधिक विशेषाधिकार मिलेगे। विवादों का शान्तिपूर्ण समाधान अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने के लिए भी राष्ट्र अपने मध्य होने वाले विवादों का समाधान शान्तिपूर्ण ढंग से करेंगे।

(3) आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नही – सं.रा. संघ किसी राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। परन्तु चार्टर के सातवें अध्याय में वर्णित कार्य वाहिक जैसे शान्ति

को खतरे में डालने वाली शान्ति भंग और अग्रघर्षण की चेष्टाओं को बारे में कार्यवाही के लागू किये जाने पर इस सिद्धांत का कोई प्रभाव न पड़ेगा।

(4) शान्ति और सुरक्षा – सं.रा. संघ शान्ति और सुरक्षा को बनाये रखने की व्यवस्था करेगा। संघ गैर सदस्य राष्ट्र से भी शान्ति एवं सुरक्षा को बनाये रखने के लिए चार्टर में सिद्धांतों को मनवाने का प्रयत्न करेगा।

(5) सं.रा. संघ की सहायतारू जब सं.रा. संघ चार्टर के अनुसार कोई कार्यवाही करेगा तो सब सदस्य राष्ट्र उसे सब प्रकार से सहायता देने के लिए प्रतिबद्ध है। वे उस देश की सहायता नहीं करेगा जिसके विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र संघ शान्ति एवं सुरक्षा के लिये कोई कार्यवाही कर रहा है।

(6) बल प्रयोग नहींरू सभी सदस्य राष्ट्र अपने अन्तर्राष्ट्रीय विवादों में किसी राज्य की अखण्डता एवं राजनीतिक स्वाधीनता के विरुद्ध न धमकी न बल का प्रयोग करेंगे।

संयुक्त राष्ट्र और क्षेत्रीय तनाव

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात कई ऐसी समस्यायें उत्पन्न हुई जिनके कारण विश्व युद्ध शान्ति को खतरा उत्पन्न हो गया किन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ के इन समस्याओं का समाधान करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये। इस प्रकार की समस्या निम्नलिखित है–

1. जनवरी 1946 में सुरक्षा परिषद के समक्ष इण्डोनेशिया मामला आया किन्तु जांच का प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका। 1947 में भारत तथा आस्ट्रेलिया ने सुरक्षा परिषद का ध्यान इण्डोनेशिया व नीदरलैण्ड के मध्य होने वाले युद्ध की ओर आकर्षित किया। सुरक्षा पिरषद ने युद्ध बन्द करने का आदेश दिया था सद्भावना सीमित नवम्बर 1973 में पाक प्रधानमंत्री ने काश्मीर के दौरे के दौरान कुछ ऐसे ध्यान दिये जो शिमला समझौते के विपरीत थे। नवम्बर 1989 ई. में बी०पी० सिंह भारत के प्रधानमंत्री बने किन्तु इस काल में काश्मीर समस्या का कोई समाधान नहीं निकल सका। पाकिस्तान 1990 में काश्मीर उग्रवादियों को सैनिक प्रशिक्षण आर्थिक सहायता एवं अस्त्र–शस्त्र देरहा है। इसके कारण हिंसात्मक गतिविधियाँ निरन्तर हो रही हैं।

18 अक्टूबर 1994 को संयुक्त राष्ट्र संघ सम्मेलन से लौटने के पश्चात तत्कालीन विदेशमंत्री सलमान खुर्शीद ने कहा कि काश्मीर मुद्दे पर अमेरिका का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ है अब अमेरिका भारत के पक्ष में है उन्होंने कहा पाकिस्तान की लाख कोशिशों के बावजूद राष्ट्रपति क्लिंटन से महासंघ के भाषण में मुद्दे का उल्लेख तक नहीं किया और महासभा में काश्मीर के मुद्दे को उठाने में पाकिस्तान पूरी तरह से विफल रहा है।

भारत ने पाकिस्तान के साथ कश्मीर सहित सभी मुद्दों पर द्विपक्षीय वार्ता के अपने प्रस्ताव को दोहराया है। 20–21 फरवरी 1999 ई. को लाहौर घोषणा पत्र में भी इसी प्रस्ताव को कार्यरूप देने के उद्देश्य से मंत्रिस्तरीय समिति के गठन का संकल्प व्यक्त किया गया किन्तु मार्च 1999 ई. में नियंत्रण रेखा पार करके काश्मीर के कारगिल बंटालिक, ट्रास आदि क्षेत्रों में घुसपैठियों के रूप में पाकिस्तानी सेना ने व्यापक घुसपैठ की। भारतीय सेनाओं ने

पाकिस्तानी मंतव्य को सफल नहीं होने दिया तथा घुसपैठियों को नियंत्रण रेखा के पार धकेल दिया भारतीय सेना ने ऐसा करते हुए नियंत्रण सेना का उल्लंघन नहीं होने दिया।

भारत वर्तमान में भी इस बात पर बल दे रहा है कि काश्मीर समस्या को शिमला समझौते के परिप्रेक्ष्य में द्विपक्षीय वार्ता द्वारा सुलझाना चाहिए।

क्यूबा समस्या

क्यूबा संकट सन् 1962 में उत्पन्न हुआ। इस संकट ने दोनों महाशक्तियों को युद्ध के क के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया। सोवियत संघ ने क्यूबा में एक मिसाइल अण्डा बनाने का निर्णय लिया जिसका अमेरिका द्वारा कड़ा विरोध किया गया। जिस समय सोवियत संघ के मिसाइल ले जाने वाले जहाज क्यूबा के रास्ते पर हो तो अमेरिका ने उन्हें रोकने के उद्देश्य से सभी सैनिक साजोसमान की कठोर नाकेबंदी के आदेश दिये। अमेरिकी सरकार ने यह घोषणा भी कर दी कि ''पश्चिमी गोलार्द्ध के किसी भी देश के विरुद्ध क्यूबा से छोड़े जाने वाले किसी भी मिसाइल को सोवियत संघ द्वारा अमेरिका पर आक्रमण माना जायेगा तथा इस प्रकार की कार्यवाही का उचित प्रत्युदर किया जायेगा।''

23 अक्टूबर 1962 ई. को अमेरिका ने अमेरिकी महाद्वीप की शान्ति व सुरक्षा को होने वाले प्रत्येक खतरे की सम्भावना को समाप्त करने का निश्चय किया। इसी उद्देश्य से 24 अक्टूबर 1962 ई. को क्यूबा के बन्दरगाहें की नाकेबन्दी और भी प्रभावशाली कर दी गई। अमेरिका व सोवियत संघ के मध्य युद्ध लगभग निश्चित हो गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव यू थांट ने मामले को सुलझाने का प्रयास किया। अमेरिका से नाकेबंदी समाप्त करने के लिये तथा सोवियत संघ से क्यूबा में जहाज न भेजने के लिये कहा गया किन्तु दोनों ही महाशक्तियाँ अपनी–अपनी बात पर द्रढ़ थीं। अतः गतिरोध समाप्त न हो सका। सोवियत संघ ने क्यूबा से मिसाइल हटाना इस शर्त पर स्वीकार किया कि अमेरिका टर्की से रॉकेट हटा लेगा।

कोरिया समस्या

कोरिया, चीन व जापान के मध्य स्थिति है। कोरिया व जापान के मध्य समुद्र अधिक चौड़ा नही है। प्राचीन काल से ही जापान कोरिया को विजेता राष्ट्र समझता था। कोरिया भी वार्षिक उपहार देकर जापान को अधिराष्ट्र के राष्ट्र के रूप में मानता था किन्तु कोरिया चीन को भी अधिराष्ट्र के राष्ट्र के रूप में मान्यता देता था।

सन् 1884 ई. में कोरिया में व्यापक उपद्रव हो गये। इस समय कोरियाई राजनीति में दो दल विद्यमान थे– चीन समर्थक दल एवं जापान समर्थक दल। चीन यूरोपीय समस्याओं में उलझा हुआ था। जापान मे अवसर का लाभ उठाते हुये कोरिया की सहायता की। परिणामतः चीन व जापान के समझौते के अनुसार चीन व जापान में परस्पर यह निर्णय हुआ था कि कोरिया में सेना भेजने की आवश्यकता होने पर दोनों ही राष्ट्र उसकी पूर्व सूचना एक दूसरे को भेजगें। समझौते का पालन करते हुए चीन ने सैनिक सहायता की सूचना जापान को दी। प्रत्युत्तर में जापान ने 8000 सैनिकों की एक टुकड़ी कोरिया भेज दी।

25 जुलाई 1894 ई. को जापानी पनडुब्बियों ने चीन द्वारा भेजे गये। कोसिंग नाम जहाज का मार्ग रोक दिया, परिणामतः अगस्त 1894 ई. में चीन व जापान के मध्य विधिवत् युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध में चीन की पराजय हुई तथा 17 अप्रैल 1895 ई. को सम्पन्न शशिमेनोसकी की सन्धि के तहत चीन ने अन्य शर्तों को स्वीकार करने के साथ कोरिया को पूर्व स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान कर दी। इस प्रकार कोरिया में चीन का प्रभाव समाप्त हो गया।

जापान का विचार था कि चीन के पराजय के बाद अब कोरिया पर उसका आधिपत्य होगा किन्तु आशा के विपरीत चीन के स्थान पर रूस अपना प्रीाव बढ़ा रहा था। अब कोरिया में दो दल थे। रूस का समर्थक दल एवं जापान का समर्थक दल। कोरिया की महारानी जापानी सुधारों के पक्ष में नही थीं। अतः 7 अक्टूबर 1895 ई. को महारानी का बध कर दिया गया। ऐसे सयम में कोरिया में रूसी प्रभाव में वृद्धि होने लगी। कोरिया के प्रश्न पर रूस व जापान के मध्य एक समझौता भी हुआ। किन्तु इस समझौते की अवहेलनाकर अपने प्रभाव में निरन्तर वृद्धि करता रहा। 15 फरवरी 1904 को रूस व जापान के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया। अन्ततः रूस की पराजय हुई तथा दोनों देशों के मध्य पोटर्स माउथ की सन्धि सम्पन्न हुई सन्धि के अनुसार कोरिया में जापान के सर्वोपरि राजनीतिक सैनिक व आर्थिक हित स्वीकृत किये गये। इस प्रकार कोरिया में जापानी साम्राज्यवाद का मार्ग प्रशस्त हो गये।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् जिस समय जापान का विशाल साम्राज्य उससे छीना गया कोरिया को भी 38 वें अक्षांश पर दो भागों में विभक्त कर दिया गया। उत्तरी कोरिया पर रूस का तथा दक्षिणी कोरिया पर अमेरिका का प्रभाव रहा। 25 जून सन् 1950 को उत्तरीकोरिया की साम्यवादी सरकार ने अमेरिका द्वारा समर्धित दक्षिण कोरिया पर आक्रमण कर दिया।

वियतनाम समस्या

सन् 1954 में जनेवा समझौते के अनुसार वियतनाम दो भागों में बंट गया –उत्तरी वियतनाम और दक्षिणी वियतनाम। उत्तर में साम्यवादी व्यवस्था स्थापित हुई और दक्षिण में एक गैर–साम्यवादी व्यवस्था। 15 अगस्त को अमेरिकी विमान ने आत्म–रक्षा के नाम पर टोकिन की खाड़ी में स्थित उत्तरी वियतनाम के कुछ सैनिक अड्डों पर आक्रमण कर दिया। 1 फरवरी 1956को इस समस्या पर विचार करने के लिए सुरक्षा परिषद की एक बैठक हुयी। अमेरिका ने परिषद से उत्तरी और दक्षिणी वियतनाम के प्रतिनिधियों को सुरक्षा परिषद की बैठक में भाग लेने के लिए बुलाने को कहा। इस प्रस्ताव का फ्रांस और रूस ने विरोध किया।

सन् 1957 के अंत में वियतनाम युद्ध ने भयंकर रूप धारण कर लिया। फरवरी 1968 के प्रारम्भ में उत्तरी वियतनाम के सैनिकों ने बड़े पैमाने पर दक्षिण वियतनाम के सैनिक ठिकानों पर आक्रमण शुरू कर दिया 13 मई 1968 से प्रेरिस में अमेरिका का उत्तरी वियतनाम के प्रतिनिधियों के मध्य वियतनाम विवाद को सुलझाने हेतु वार्ता चली पर सफलता प्राप्त न हुई 26 जनवरी 1973 को इस समस्या को सुलझाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन प्रारम्भ हुआ 29 जनवरी 1973 को नियंत्रण और निरीक्षण आयोग की स्थापना की गयी। इस प्रकार युद्ध विराम हुआ। 2 मार्च 1973 को सम्मेलन समाप्त हो गया वियतनाम में

स्थायी शान्ति स्थापित न हो सकी। जुलाई, अगस्त 1975 में उत्तर और दक्षिण वियतनाम के मध्य जोरदार झड़पें शुरू हो गयी। 30 अप्रैल 1975 को दक्षिण वियतनाम के सैनिकों ने अपने हथियार राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे के प्रमुख डाल दिए परिणाम स्वरूप वियतनाम का एकीकरण हो गया दोनों महाशक्तियों के मध्य एके लम्बे समय से शीत युद्ध का केन्द्र बन रहाथा।

अध्याय–14

प्रगति का युग–आर्थिक, सामाजिक वैज्ञानिक, तकनीकी सांस्कृतिक

कृषि व उद्योग

सत्रहवीं शताब्दी तक कृषि के क्षेत्र में परम्परागत विधियों एवं उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। इसका प्रमुख कारण यह था कि कृषिजन्य वस्तुओं की अधिक मांग नहीं थी। किन्तु अठारहवीं सदी के अंत में औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप कृषि के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए ये परिवर्तन निम्नलिखित रूप में दृष्टिगोचर हुए–

1. खुले एवं विखरे खेतों के स्थान पर बड़े पैमाने पर इकट्ठे खेतों पर कृषि को आरम्भ किया गया।

2.कृषि का अन्य क्षेत्रों में विस्तार किया।

3. आत्म निर्भर कृषकों का कृषिगत श्रमिकों में परिवर्तन हो गया।

4. कृषि में प्रति श्रमिक उत्पादकता में वृद्धि हो गयी।

5. ग्रामीण कृषकों को शहरी आबादी बढ़ने पर अधिक उत्पादन करना पड़ा।

6. कृषकों को कारखानों के लिए अधिक कपास का उत्पादन करना पड़ा।

7. कृषि जन्य वस्तुओं की माँग बढ़ने से कृषि के क्षेत्र में क्रान्ति का मार्ग–प्रशस्त हुआ।

8. प्रारम्भ में कृषि घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु की जाती थी किन्तु अब कृषि में पूँजी लाभ–प्राप्ति के उद्देश्य से लगाई जाने लगी।

बीज बोने की नवीन पद्धति

सर्वप्रथम वार्कशायर के एक अंग्रेज जमींदार जेथोटल (1674–1740) ने बीज बोने के लिए श्ड्रिलश नामक एक यन्त्र बनाया, जिससे निश्चित पंक्तियों में उचित परिमाण में बीज बोय जा सकते थे। अब बीजों का कार्य अधिक शीघ्रता से होने लगा।

उर्वरता वृद्धि की नवीन पद्धति – अंग्रेज जमींदार टाऊनशैण्ड (1674–1738 ई.) ने फसलों को बदल–बदल कर लगाने के लाभ समझाये इस प्रणाली को अपनाने से प्रति एकड़ दुगुना उत्पादन होने लगा पशुओं के लिए अतिरिक्त खाद्य सामग्री भी उपलब्ध होने लगी।

पशुओं के नस्ल में सुधार – सन् 1770 ई. के आस–पास राबर्ट बेकवैल ने पशुपालन को एक लाभदायक व्यवसाय बना दिया। उसने गायों एवं भेड़ों की नस्ल सुधारने के लिए अनेक प्रयोग किये। अपने प्रयोगों के माध्यम से उसने पूर्व की अपेक्षा तिगुनी वनज के भेड़ें तैयार करने में सफलता प्राप्त की उसने मवेशियों को दुधारू व गोश्त प्रदान करने वाला तथा भेड़ों को ऊँन तथा माँस देने वाला बनाने में सफलता प्राप्त की।

नई खेती का प्रचार – ब्रिटेन के कृषक आर्थर पंग (1741–1820 ई.) ने विभिन्न देशों में प्रचलित तत्कालीन कृषि प्रणालियों का गहन अध्ययन किया तथा श्नई खेतीश का प्रचार किया इसके अन्तर्गत उसने छोटे खुले खेतों को मिलाकर बड़े–बड़े कृषि फार्म बनाने एवं उनसे होने वाले लाभों का विवरण दिया।

बाड़बन्दी अधिनियम – इंग्लैण्ड में 1792 ई. से 1815 ई. के मध्य 956 बाड़बन्दी अधिनियम बनाये गये। कई लाख एकड़ भूमि की बाड़बंदी हेतु कृषि उत्पादन में पर्याप्त बृद्धि हुई, किन्तु साथ ही छोटे कृषकों को भूमि छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा।

उर्वरकों का अधिक प्रयोग – सन् 1880 ई. तक कृषक प्राचीन पद्धति से खादों का प्रयोग करते थे किन्तु लीबिंग नामक जर्मन रसायन शास्त्री ने यह प्रतिपादित किया कि पोटाश, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, मिला देने से भूमि उर्वरता बढ़ जाती है उर्वरकों का अधिक प्रयोग किया जाने लगा।

कृषि क्षेत्र में अन्य आविष्कार – कृषि क्षेत्र में अन्य आविष्कार निम्नलिखित हैं–

1. 1793 ई. में अमेरिका निवासी हिटने ने अनाज को भूसे से अलग करने वाली मशील का आविष्कार किया।

2. 1834 ई. में मैककोरमिक ने फसल काटने वाली मशीन का आविष्कार किया कालान्तर में भी कृषि का यन्त्रीकरण बढ़ता चला गया जिसके कारण कृषि उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। भोजन की पौष्टिकता में भी वृद्धि हुई तथा पशुओं को चारा देने में सरल हो गया।

अमेरिका – अमेरिका में ग्रह युद्ध (1861–1885 ई.) के पश्चात् कृषि के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये। कृषि का पूर्णरूपेण यंत्रीकरण किया गया। 1860 ई. से 1910 ई. के मध्य कृषि फार्मों की संख्या 20 लाख से बढ़कर 60 लाख हो गई। प्रत्येक खाद्यान्न के उत्पादन में आशातीत वृद्धि ही हुई।

जापान – जापान में कृषि का विकास मेईजी युग (1868–1912 ई.) में किया गया कृषकों को उस भूमि का स्वामी बना दिया गया जिस पर वे सामन्तों के लिए खेती करते आ रहे थे। बेगार प्रथा को समाप्त कर दिया गया। पश्चिमी देशों से कृषि विशेषज्ञों की सेवायें प्राप्त की गयी तथा कृषि विद्यालय स्थापित किये गये एवं कृषि समितियाँ गठित की गयी उन्नत किस्म का उत्पन्न किया गया।

सोवियत संघ – सोवियत संघ में 1905 ई. की क्रान्ति ने कृषकों में जागरूकता उत्पन्न की। 1906 ई. से 1911 ई. तक स्टोलिपिन प्रधानमंत्री पद पर रहा एक कृषक का पुत्र होने के कारण वह कृषि में सुधार करके कृषकों को सन्तुष्ट रखना चाहता था उसने सर्वप्रथम श्मीरश (गांव की बिरादरी) की प्रथा को समाप्त किया क्योंकि वह कृषकों को भूमि का स्वामी बनाना चाहता था। उसने व्यवस्था की कि मीर के दो तिहाई सदस्यों द्वारा भूमि के पुनर्वितरण की मांग करने पर भूमि को बांट देना चाहिए इस व्यवस्था के परिणामस्वरूप 10 लाख व्यक्तिगत खेतों का निर्माण हुआ जिससे किसान सन्तुष्ट हुए तथा उनमें एकता की भावना आई परिणामतः कृषक संघ की भी स्थापना की गई। किन्तु 1918 ई. से 1912 ई. के मध्य कृषि एवं कृषकों की स्थिति में गिरावट आई।

1912 ई. से 1929 ई. के मध्य श्नई आर्थिक नीति के तहत कृषि का पुनरुद्धार किया गया उन्हें अतरिक्त अनाज बेंचने एवं प्राप्त धन की अपने पासरखने की अनुमति दीगई। दिसम्बर 1927 ई. में कृषि का राष्ट्रीयकरण किया गया।

मिस्र –मिस्र मेंमेहमत अली (1805–1849) ई. के काल में उल्लेखनीय सुधार किए गए अनाज निर्यात पर सरकारी एकाधिकार स्थापित किया गया कृषि को आधुनिक पद्धति द्वारा अधिक उपयोगी बनाया गया आधुनिक कृषि यंत्रों के उपयोग द्वारा एवं सिंचाई प्रबंध द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि की गयी इस प्रकार कृषि को अधिक उन्नत एवं आधुनिक स्वरूप प्रदान किया गया।

तुर्की – सन् 1923 ई. में तुर्की गणतंत्र का प्रथम राष्ट्रपति बनने के बाद कमाल पाशा ने कृषि सुधार की ओर विद्यालयों तथा प्रायोगिक फार्मों के माध्यम से कृषि के नवीन तरीकों का प्रचार किया गया।

इटली – सन् 1925–26 ई. में शासन सत्ता सम्भालने के बाद मुसोलिनी के कृषि के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण सुधार किए तथा देश को खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया।

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप उद्योगों में हुये क्रान्तिकारी परिवर्तन

कृषि उत्पादन में हुई वृद्धि का सीध सम्बन्ध औद्योगिक विकास से है। जनसंख्या का एक बड़ा भाग ऐसा था जिसका कृषि कार्यों से कोई सम्बन्ध नही था। ये लोग उद्योगों में कार्य करने के लिये प्रेरित हुये। जनसंख्या उत्पादन क्षमता को प्रोत्साहन मिला।

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप उद्योग के क्षेत्र स्वरूप एवं उत्पादन प्रक्रिया तीव्र परिवर्तन हुये। औद्योगिक क्रान्ति कोई आकस्मिक घटना नही वरन् सतत् प्रक्रिया है। औद्योगिक क्रान्ति के अन्तर्गत निम्नलिखित परिवर्तन हुए–

1. पहले उत्पादन सम्बन्धी कार्य जो हाथ से किये जाते थे। अब वाष्पचालित यन्त्रों द्वारा किये जाने लगे।

2. यन्त्रों को चलाने हेतु जल शक्ति के स्थान पर भाप शक्ति एवं कालान्तर में विद्युत एवं प्राकृतिक तेल का प्रयोग किया जाने लगा।

3. पूँजी के उपयोग में वृद्धि हुई। इस्पात की माँग पूर्ति हेतु इस्पात के कारखाने खोले गये।

इस काल में उद्योगों में निम्नलिखित क्रान्तिकारी परिवर्तन हुयेवस्त्र उद्योग रू औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ मुख्यतः वस्त्र उद्योग से हुआ। प्राचीन उद्योग वस्त्रों की मांग की पूर्ति में समर्थ नहीं थे। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड में सूती कपड़े भारत से आयात किये जाते थे। ऐसे में भारत के लिये इंग्लैण्ड ने भारतीय आयात पर कई प्रतिबन्ध लगा दिय। 1733 ई. में जॉन के नामक बुनकर ने श्फ्लाइंगशटलश का आविष्कार किया। जिसके कारण कार्य में तेजी आई।

1764 ई. में जेम्स हरग्रीव्स ने स्पिनिंग जेनी का निर्माण किया। इसमें एक साथ सूत के आठ धागे काते जा सकते थे। 1769 ई. में शरिचर्ड आर्कराइट ने स्पिनिंग जेनी में सुधार करके श्वाटपर फ्रेम नामक सूत काटने का यंत्र बनाया। 1779 ई. में सेमुअल काम्पटन ने म्यूल नामक मशीन बनाई जिससे कि बारीक सूत काता जा सकता था। 1785 ई. में एडमण्ड कार्टराइट ने शक्ति चालित करघे का निर्माण किया इससे बढ़िया किस्म का कपड़ा इतना सस्ता हो गया जितना कि पहले कभी नहीं हुआ था। 1793 ई. में एली व्हिटने ने कपास ओटाने की मशीन का आविष्कार किया जिसे (काटन जिन) कहा गया। अब कपास से बिनौलो को शीघ्रतापूर्ण अलग किया था। 1825 ई. में रिचर्ड राबर्ट्स ने पहली स्वचालित बुनाई मशीन बनाई। नवीन यंत्रों को चलाने के लिये शक्ति के नये स्रोत की आवश्यक्ता भी बढ़ती गयी। जल शक्ति का प्रयोग करने की अनेक सीमायें थीं। अतः वाष्पशक्ति के आविष्कारक की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया। सर्वप्रथम 1712 ई. में टामसन न्यूकोमैन नामक अंग्रेज ने खानों से पानी बाहर निकालने के लिये वाष्प इंजन का आविष्कार किया। जेम्स वाट के आविष्कार ने वस्त्र उद्योग को और अधिक गति प्रदान की।

लौह उद्योग –नवीन यन्त्रों एवं मशीनों के आविष्कार से लोहे की माँग में भी वृद्धि गई थी। इंग्लैण्ड में लोहे को विघलाने के लिये लकड़ी का कोयला काम मेंलाया जाता था। 1750 ई. के आसपास पत्थर के कोयले से बना कोक प्रयुक्त करने की जानकारी अब्राइम डर्बी एवं जॉन रोबक ने प्रदान की। परिणामस्वरूप पत्थर के कोयले के खनन में प्रगति हुई। 1784 ई. में हेनरी कोर्ट ने एक ऐसी विधि का आविष्कार किया जिसके द्वारा अधिक शुद्ध व अच्छा लोहा बनना सम्भव हो गया। धीरे–धीरे लोहे का स्थान इस्पात ने ले लिया। लोहे को शुद्ध करके उसमें कुछ मात्रा में कार्बन, मैगनीज तथा अन्य पदार्थों को मिलाकर इस्पात तैयार किया जाता था।

औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ ब्रिटेन में होने के कारण उद्योगों का विकास भी सर्वप्रथम यही हुआ। किन्तु धीरे–धीरे यूरोप एवं साथ ही विश्व के अन्य देशों में भी औद्योगिक विकास की ओर ध्यान दिया गया जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

1. जर्मनी– यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति का विस्तार जर्मनी में हुआ। कई स्थानों पर सूती वस्त्र की मिले स्थापित की गई। सन् 1860 ई. तक जर्मनी की गणना यूरोप के औद्योगिक राज्यों में की जाने लगी।

2. अमेरिका – अमेरिकी श्ग्रहयुद्ध के दौरान अमेरिकी आर्थिक स्थिति को पर्याप्त क्षति हुई। प्राचीन उद्योगों का प्रसार किया गया तथा नवीन उद्योग स्थापित किये गये। इस्पात उद्योग में एण्ड्यू कारनीज एवं तेल उद्योग में जान राकफेलर का विशेष योगदान रहा।

3. जापान – पाश्चात्य देशों का अनुकरण करके औद्योगिक क्रान्ति को सफल बनया गया जापान में सरकार ने विदेशी पूँजी स्वयं उधार लेकर उद्योगों में लगाई। मेईजी सरकार ने 1870 ई. में उद्योग मंत्रालय की स्थापना की। सन् 1869 ई. में जापान ने आधुनिक ढंग की कोयले की खान स्थापित की गई।

1880 ई. तक वहाँ 8 कोयले की खाने आरम्भ हो चुकी थी। 1871 ई. में मशीन के पुर्जे बनाने का कारखाना 1875 ई. में सीमेन्ट का कारखाना व 1876 ई. में काँच का कारखाना स्थापित किया गया। सन् 1890 ई. तक जापान में पकड़ा, शीशा, सीमेन्ट, रेशम व कागज आदि उद्योगों को पर्याप्त विकास हुआ।

4. सोवियत संघ – सोवियत संघ में श्नई आर्थिक नीति (1921–29 ई.) के द्वारा औद्योगीकरण में तीव्रता लाने का प्रयास किया गया। 1817 में ही कारखानों पर पूँजीपतियों का स्वामित्व समाप्त करके उनका संचालन मजदूरों की एक प्रबंध समिति को सौंप दिया गया। बड़े उद्योगों का नियंत्रण सरकार ने अपने पास रखा। कपड़े की समस्त मिलों को एक केन्द्रीय संस्था के अधीन कर दिया गया। इसी प्रकार की व्यवस्था इस्पात, लोहा, कागज चीनी व रासायनिक द्रव्यों आदि के उद्योगों में भी की गई। इस काल में उद्योगों का पर्याप्त विकास हुआ।

मिस्र – मिस्र आधुनिकीकरण मेहमल आली के काल में हुआ। इस काल में सर्वप्रथम वस्त्र उद्योग संयन्त्र आयात किया गया। चीनी उत्पाद का भी एक कारखाना स्थापित किया गया।

तुर्की –उद्योगों के विकास हेतु विदेशी विशेषज्ञों का सहारा लिया गया। आर्थिक नियंत्रण व आर्थिक सुविधा हेतु विभिन्न बैंक स्थापित किये गये। 1935 से 1939 ई. के मध्य वस्त्र, खनिज व शक्कर उद्योग में उल्लेखनी प्रगति हुई। इटली रू 1930 ई. में विदेशी मोटरकारों पर आयात शुल्क दुगुना कर दिया जिससे कि इटली की फिएट मोटर कम्पनी को काफी लाभ पहुँचा। जल विद्युत उत्पादन में भी इटली ने शीघ्र ही सफलता प्राप्त कर ली। रासायनिक व विद्युत उपकरणों का निर्यात किया जाने लगा। इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में इटली आत्मनिर्भर हो गये।

फ्रांस – फ्रांस में वाष्प इंजन का प्रयोग 1830 ई. में ही शुरू हो गया था। 1840 ई. तक उसका निर्माण भी प्रारम्भ हो गया। फ्रांसीसियों ने बड़ी–बड़ी मशीनों का निर्माण आरम्भ करना था। 1870 ई. के आसपास फ्रांसीसी उद्योग 1851 ई. की तुलना में पाँच गुनी अश्वशक्ति का प्रयोग करने लगा।

इस प्रकार इंग्लैण्ड में प्रारम्भ हुई औद्योगिक क्रान्ति ने शेष यूरोप के लिये भी औद्योगीकरण का मार्ग सरल कर दिया। इंग्लैण्ड के बाद बेल्जियम पहला देशथा, जिसने ब्रिटिश औद्योगिक निपुणता व कौशल का उपयोग बड़े पैमाने पर किया। बेल्जियम के पश्चात् फ्रांस ने औद्योगीकरण की ओर कदम बढ़ाये।

जर्मनी में औद्योगीकरण का प्रसार फ्रांस के बाद हुआ यूरोप की बड़ी शक्तियों में रूस में औद्योगिक क्रांति का आगमन सबसे बाद में हुआ।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति का युग

पुनर्जागरण काल में विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई, जिसके लिये निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे–

1. धार्मिक नियंत्रण से मुक्त स्वतंत्र चिन्तन के अवसर की प्राप्ति।

2. दार्शनिकों द्वारा भविष्य सम्बन्धी चिन्तन करना।

3. बौद्धिक विकास होना।

4. राष्ट्रीय राज्यों का उत्थान होना।

5. नवीन सामाजिक व्यवस्था के कारण वैज्ञानिक विचारधारा को प्रोत्साहन प्राप्त होना।

6. नवीन देशों की खोज से नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न होना।

7. विद्वानों ने समस्याओं के समाधान हेतु तर्क को महत्व देना आरम्भ किया।

जैसा कि फ्रांसिस बेकन ने कहा, ''ज्ञान की प्राप्ति केवल प्रेक्षण और प्रयोग करने से ही हो सकती है।''

वैज्ञानिक प्रकृति का संक्षिप्त इतिहास

यूनानी खगोल शास्त्री टालमी ने कहा कि, ''पृथ्वी विश्व के केन्द्र में स्थित है।''

सोलहवीं शताब्दी में पोलैण्ड के वैज्ञानिक कॉपर निकस ने इस विचार का खण्डन करते हुये सिद्ध किया कि ष्पृथ्वी एक उपग्रह है तथा यह सूर्य के चारो ओर घूमती हैष् इटली के वैज्ञानिक बूर्नो ने भी इसका अनुमोदन किया। यह नया सिद्धांत बाइबिल के वक्तव्य के अनुकूल नही था अतः रोम के धर्माधिकारियों द्वारा बूनों को जिन्दा जला दिया गया। जर्मन खगोलशास्त्री जॉन केपलर ने कॉपरनिकस के सिद्धांतों की पुष्टि प्रमाणों के आधार पर की तथा बताया कि ग्रहसूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्ताकार कक्षा में चक्कर लगाते हैं। गैलीलियों ने भी इन विचारों का समर्थन किया जिसके कारण उसे चर्च का कोपभाजन बनना पड़ा।

इंग्लैण्ड के महान वैज्ञानिक एवं गणितज्ञ आइजक न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का निय प्रतिपादित किया जिसके अनुसार प्रत्येक वस्तु पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण पृथ्वी पर गिरती है। न्यूटन के अन्वेषण से लोगों के अन्धविश्वास एक बड़ी सीमा तक दूर हो गये। इस सिद्धांत ने खगोलविज्ञान को भी प्रभावित किया।

नीदरलैण्ड के वेसोलियस ने औषधि तथा शल्य प्रणाली का गहन अध्ययन किया। वेसेलियस ने मानव शरीर की बनावट नामक एक पुस्तक लिखी जिसमें शरीर के सभी अंगों का समुचित विवरण प्रस्तुत किया गया।

इंग्लैण्ड के शविलियम हार्वेश ने श्रक्त परिसंचरणश का सिद्धांत प्रतिपादित किया। इसके परिणाम स्वरूप स्वास्थ्य एवं रोग की समस्याओं का अध्ययन नये ढंग से आरम्भ हुआ।

गैलीनियो ने भौतिकशास्त्र के क्षेत्र में श्पेण्डुलम के सिद्धांत का आविष्कार किया जिसके कारण घड़ियों का निर्माण सम्भव हो सका। उसने वायुमापक यन्त्र का भी आविष्कार किया।

फ्रांसीसी गणितज्ञ एवं दार्शनिक देकार्ते ने सर्वप्रथम यह बताया कि बीजगणित का उपयोग ज्यामिती में किस प्रकार किया जाता है। उसने विज्ञान में संदेहवाद को जन्म दिया जिससे विज्ञान की प्रगति में काफी सहायता मिली।

इस काल में खगोल विज्ञान व भौतिकशास्त्र के अतिरिक्त चिकित्सा, रसायन एवं गणितशास्त्र के क्षेत्र में भी अपूर्व उन्नति हुई। धातु की आवश्यकता ने खाने खोदने का मार्ग भी प्रशस्त किया। प्रथम बार धातुओं के मिश्रण का उपयोग औषधियों में किया गया। पैरासेल्सस ने रसायन तथा चिकित्साशास्त्र का निकट सम्बन्ध स्थापित किया। हैलमोंट ने कार्बनडाई आक्साइड गैस की खोज की।

इस प्रकार पुनर्जागरण काल में जो भी वैज्ञानिक आविष्कार किये गये उनका प्रयोग वर्तमान में भी हो रहा है। इस युग के आविष्कारों ने नवयुग की आधारशिला रखी तथा मानव जीवन को उन्नत बनाने के प्रयास किये। किन्तु अभी वैज्ञानिक प्रगति पूर्णता को प्राप्त नहीं हुई थी। अनेक अन्धविश्वासों,जादूएवं टोनों का अभी भी प्रचलन था।

वैज्ञानिक प्रगति का यह क्रम अनवरत रूप से जारी रहा। अठारवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वैज्ञानिक आविष्कारों ने ही मशीनी युग का आरम्भ किया।

तकनीकी क्षेत्र मे प्रगति

मध्य युग में संकीर्ण विचारधारा ने विज्ञान के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण विकास नही होने दिया किन्तु तकनीकी क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण आविष्कार हुए। तकनीकी सुधार होने से कृषि व अन्य वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा। शनैः शनैः सामन्ती अर्थव्यवस्था पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में परिवर्तित होने लगी। सोलहवीं व सत्रहवीं शताब्दी के दौरान प्रयोगात्मक विज्ञान के नवीन तरीकों का प्रसार हुआ।

वस्तुतः विज्ञान ने नहीं वरन् तकनीकी ने औद्योगिक क्रान्ति में प्रत्यक्ष भूमिका निभाई। जबकि तकनीकी प्रगति विज्ञान पर ही निर्भर थी। उदाहरणार्थ, न्यूटन के सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त किये बिना वाष्प इंजन का आविष्कार सम्भव नहीं था।

कृषि के क्षेत्र में नवीन तकनीकी कृषि के क्षेत्र में निम्नलिखित तकनीकें विकसित हुई–

1. 1733 ई. में जॉन के नामक बुनकर फ्लाईंग शटल का आविष्कार किया।

2. 1764 ई. में जेम्स हरग्रीव्स ने श्स्पिनिंग जेनीश का आविष्कार किया। इससे एक ही साथ सूत के आठ धागे काते जा सकते थे।

3. 1769 ई. में रिचर्ड ऑर्कराइट ने स्पनिंग जेनी में संशोधन कर जलं शक्ति से चलने वाला श्वाटर फ्रेम नामक सूत कातने का यंत्र बनाया। फिशर के अनुसार, ''आर्कराइट के

आविष्कार ने महान सूती वस्त्र उद्योग की नींव डाली और कारखाना व्यवस्था को जन्म दिया।''

4. 1769 ई. में सेमुअल क्राम्टन ने स्पिनिंग जेनी और वाटर फ्रेम को मिलाकर एक मशीन बनाई जिसे श्म्यूलश कहा गया। इससे बारीक सूत काता जा सकता है।

5. 1785 ई. में एडमण्ड कार्टराइट ने शक्ति चालित करघे का आविष्कार किया।

6. 1825 ई. में रिचर्ड रॉबर्ट्स ने पहली स्वचालित बुनाई आविष्कार किया।

निम्नलिखित तकनीकी आविष्कार–

1. सर्वप्रथम 1712 ई. में टॉमसन न्यूकोमैन नामक अंग्रेज ने खानों से पानी बाहर निकालने के लिये वाष्प इंजन का आविष्कार किया।

2. 1769 ई. में जेम्सवॉट ने न्यूकोमैन के इंजन के दोषों को दूर किया तथा 1775 ई. में एक उद्योग पति की साझेदारी में इंजन बनाने का कारखाना स्थापित किया।

3. लौह उद्योग के क्षेत्र में नवीन तकनीक का आविष्कार हुआ। लोहे से बनीमशीने बजनदार होती थीं।

परिवहन के क्षेत्र में नवीन तकनीकरू परिवहन के क्षेत्र में निम्नलिखित तकनीकों का विकास हुआ–

1. अधिक उपयोगी एवं टिकाऊ सड़कों के निर्माण हेतु मकाडम ने सड़कनिर्माण का एक नवीन तरीका खोज निकाला।

2. अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही नहर बनाने की तकनीक का विकासहुआ।

3. सन् 1807 ई. में प्रथम वाष्प चालित नौका श्क्लैमोण्टश का आविष्कार हुआ।

4. सन् 1838 ई. में समुद्रपार जाने वाली स्टीम बोट श्सिरिअसश ने अठारह दिन में अटलांटिक महासागर को पार किया।

5. सन् 1860 ई. में पेट्रोल इंजन के आविष्कार के परिणामस्वरूप अमेरिका, फ्रांस, जर्मन व इंग्लैण्ड में मोटर निर्माण के कारखाने स्थापित किये गये।

6. 1814 ई. में जॉर्ज स्टीफेन्सन ने प्रसिद्ध भाप इंजन (रॉकेट) का आविष्कार किया। यह लोहे की पटरियों पर गाड़ी खींच सकता था। इसके परिणामस्वरूप 1830 ई. में प्रथम रेलगाड़ी चली।

संचार के क्षेत्र में नवीन तकनीकरू संचार के क्षेत्र में निम्नलिखित तकनीकी परिवर्तन हुये–

1. 1844 ई. में सेमुअल मौर्स ने एक व्यावहारिक तार यंत्र का आविष्कार किया जिसके द्वारा महाद्वीपों को परस्पर सम्बंधित किया जा सका।

2. 1876 ई. में ग्राहम बैल ने टेलीफोन का आविष्कार किया।

संचार व सूचना की प्रगति का युग रू मध्यकाल के अन्धकार युग के पश्चात् पुनर्जागरण का आगमन हुआ यह एक संक्रमण काल था जो एक ओर मध्यकालीन विशेषतायें लिये हुये था दूसरी ओर इसमें आधुनिकता की भी अपरिमित सम्भावनायें थी। संचार एवं सूचना के विभिन्न माध्यमों में से एक छपाई अथवा मुद्रण प्रक्रिया है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में मध्य में जर्मनी के जोहन्नेस गुटेनवर्ग ने एक ऐसी टाइप मशीन का आविष्कार किया जो आधुनिक प्रेस की पूर्ववर्ती कही जा सकती है इस यंत्र के आविष्कार ने संचार व सूचना के विकास का मार्ग खोल दिया। सन् 1477 ई. में कैक्सटन ने ब्रिटेन में छापा खाना स्थापित किया। पुस्तकों के माध्यम से लोगों ने अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई इस प्रकार संचार एवं सूचना के क्षेत्र में यह पहला महत्वपूर्ण कदम था। साथ ही खोज प्रक्रिया आरम्भ हुई।

अठारहवीं शताब्दी के अनेक प्रतिभाशाली दार्शनिकों एवं साहित्यकारों यथा माण्टेस्क्यू वाल्टेयर रूसो व दिदरो आदि ने अपने साहित्य के माध्यम से मानसिक जगत को गहराइयों तक आन्दोलित किया। उन्होंने राजनीति धर्म समाज आदि से सम्बंधित विचारों को नया आयाम दिया। इससे न्याय स्वतंत्रता एवं समानता के विचारों का प्रचार–प्रसार हुआ और यही विचार विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली क्रान्तियों के आधार से दूर लोगों को स्वतंत्र चिन्तन की प्रेरणा प्राप्त हुई तथा वे उदार प्रगतिशील एवं आदर्श समाज की स्थापना के लिये अग्रसर हुये।

लेखकों ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त दोषों व बुराईयों को उजागर किया। लोगों का ध्यान आकृष्ट कर इन बुराईयों को उन्मूलन के लिये उत्साहित किया। एक स्थान विशेष की परिस्थितियों का ज्ञान अन्य क्षेत्रों द्वारा प्राप्त करना सुगम हो गया।

सन् 1844 ई. में सैमुअल मौर्स ने एक व्यावहारिक तार यंत्र का आविष्कार किया। तार यंत्र के सिद्धांत का उपयोग शीघ्र ही विश्व के महाद्वीपों को परस्पर सम्बंधित करने के लिए किया गया। सर्वप्रथम दो महाद्वीपों को जोड़ने के लिए उत्तरी अमेरिका व यूरोप के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय तारयंत्र अटलांटिक केवल लगाया गया। इसे सन् 1866 में एक अमेरिकी साईरस फील्ड ने तैयार किया था। सन् 1876 ई. में ग्राहम बैल ने टेलीफोन का आविष्कार करके संचार व्यवस्था को ही परिवर्तित कर दिया।

औद्योगिक क्रांति का सर्वप्रथम प्रभाव इंग्लैण्ड पर परिलक्षित हुआ जिसके कारण संचार के भी नवीन साधन विकसित हुए। तत्पश्चात् बेल्जियम ने भी इंग्लैण्डका अनुकरण किया। फ्रांस में सरकार ने संचार के साधनों का का विकास किया। यद्यपि जर्मनी में भी औद्योगिक क्रान्ति का प्रसार हुआ। किन्तु वहाँ की संचार व्यवस्था कम विकसित थी। 1870 ई. के पश्चात् जर्मनी के औद्योगिक विकास में तीव्रता आयी।

समाचार शनैः शनैः जहाँ एक ओर टेलीफोन व्यवस्था का प्रसार होता गया वहीं दूसरी ओर पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से व विचार–विश्लेषण व घटना – चित्रण द्वारा लोगों के ज्ञान का विकास हुआ। डाक, तार टेलीफोन आदि के आविष्कार से मनुष्य ने देश और काल पर

अभूतपूर्व विजय प्राप्त की। संचार साधनों के कारण व्यापारिक सौदे करने में भी सहायता प्राप्त हो गई।

जापान में संचार के साधनों में डाक व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया गया। सामन्ती युग की समाप्ति से पूर्व ही राष्ट्रीय डाक सेवा आरम्भ हो चुकीथी, किन्तु नियमित डाक व्यवस्था का अभाव था। सन् 1871 ई. में जापान में नई डाक व्यवस्था आरम्भ की गई। सन् 1877 ई. में जापान अन्तर्राष्ट्रीय डाक–संघ का सदस्य हो गया। सन् 1869 ई. में मि० बुर्नटन की देखरेख में टोकियो से याकोहामा तक पहली तार लाईन का निर्माण किया।

जापान का प्रथम दैनिक समचार पत्र दि योकोहामा मोनिची 1870 ई. में आरम्भ हुआ तथा 1875 ई. तक सौ से अधिक जापानी पत्र–पत्रिकाओं में छपने लगी।

प्रथम विश्व युद्ध के लिये उत्तरदायी कारणों में समाचार पत्रों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। यूरोपीय देशों के समाचार पत्रों ने युद्ध को भड़काने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी प्रकार 1911 ई. की राज्य क्रान्ति में चीनियो को पश्चिम के स्वतंत्रता समानता एवं भ्रातृत्व के सिद्धांतों ने आकृष्ट किया।

मिस्र ने 1822 ई. में विद्यालयों की पुस्तकों के लिये एक सरकारी छापाखाना श्बुलाकश में स्थापना की जहाँ 1840 ई. तक लगभग 243 पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। 1828 ई. से मिस्र में दैनिक घटनाओं से सम्बंधित समाचार पत्र श्अल–बकाई अलामिया प्रारम्भ किया गया।

इस प्रकार संचार व सूचना के माध्यमों के विकास ने लोगों में जागृति उत्पन्न की आर्थिक समृद्धि एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में योगदान दिया बौद्धिकता में वृद्धि की अन्धविश्वासों को दूर कर सत्य से परिचित कराया, देशों में निकट का सम्पर्क स्थापित किया एवं आदर्श समाज की स्थापना में भी सहयोग प्रदान किया।

पुनर्जागरण का अर्थ रू सांस्कृतिक क्रान्ति (Cultural Revalution) – पुनर्जागरण वह मनोदशा है जिसने मध्ययुग के बाद की परिस्थितियों में मनुष्य को चेतनायुक्त बनया। मध्यकाल में नगण्य समझे जाने लगा। यह काल पुरातन की प्ररेणा पर आधारित नवीन युग निर्माण की क्रिया था। यूरोपीय इतिहास में पुनर्जागरण काल सामान्यतया 1350 ई. से 1550 ई. के मध्य माना जाता है।

पुनर्जागरण काल में अग्रलिखित तत्वों का समावेश है– सामन्तवाद का पतन प्राचीन साहित्य का अध्ययन, बारूद व कुतुबनुमा का आविष्कार, आधुनिक विज्ञा का प्रारम्भ, नवीन व्यापारिक मार्गों की खोज आदि।

पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप मनुष्य मध्यकालीन बन्धनों से मुक्त होक स्वतंत्र चिन्तन की ओर अग्रसर हुआ तथा मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं क उन्नयन उसयुग के साहित्य कला एवं विज्ञान आदि क्षेत्रों में परिलक्षित हुआ पुनर्जागरण की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति इटली में हुई। तदुपरान्त अन्य यूरोपीय देशं में इसका प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ।

साहित्य के क्षेत्र में प्रगति

पुनर्जागरण काल से पूर्व साहित्य की रचना मात्र लैटिन व यूनानी भाषा में की जाती थी किन्तु इस काल में विभिन्न देशों ने अपनी–अपनी मातृभाषा में साहित्य का सृजन प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त मध्ययुग में रचित साहित्य धार्मिक विषयों पर आधारित था किन्तु इस युग के साहित्य में मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को महत्व दिया गया। साथ ही पुनर्जागरण काल के साहित्य की एक प्रमुख विशेषता के रूप में गद्य कला एक महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा के रूप में उभर कर सामने आई।

इताबली साहित्य पुनर्जागरण काल में दांते फ्रांसिस्को, पैट्रार्क एवं ज्योवानी बुकासिमों आदि साहित्यकारों ने इतालबी साहित्य की नई दिशा प्रदान की। दांते की प्रसिद्ध कृति डिवाइन कॉमेडी है जिसमें एक काल्पनिक जगत की यात्रा का वर्णन है।

अंग्रेजी साहित्य –अंग्रेजी साहित्य की प्रगति का समय कवि जाफरे चौसर के समय से प्रारम्भ होता है। चौसर (1340–1400) ई. को अंग्रेजी काम का शपिताश कहा जाता है। उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति कैन्टरबरी टेल्स है। इस रचना पर बुकासियो की डैकेमेरोन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

अन्य अंग्रेजी साहित्यकार जिसने पुनर्जागरण के कार्य को आगे बढ़या, सर टॉमस मूर हैं। जिसकी महान किन्तु विवादस्पद कृति श्यूटोपियाश है। इस रचना मेंइंग्लैण्ड में व्याप्तसामाजिक बुराईयों एवं आर्थिक दोषों का निरूपण किया गया है। उसने आदर्श समाज व आदर्श राज्य के सिद्धांतों का वर्णन किया है। फ्रांसिस बेकन इस युगक का सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार था। इस काल का सर्वाधिक प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि विलियम शेक्सपियर है। उसने अपनी रचनाओं में मानवीय स्वभाव के विभिन्न पहलुओंका सशक्त एवं सजीव वर्णन किया है। उसने दुखान्त व सुखान्त दोनों ही प्रकार के नाटक लिखे। मर्चेन्ट ऑफवेनिस, जूलिएट, एज यू लाइफ इट, जूलियर सीजर, मैकवेथ एवं टेमलेट आदि उसकी रचनायें हैं। शेक्सपियर से समय में अंग्रेजी साहित्य का चरमोत्कर्ष हुआ। फ्रांसीसी साहित्य रू इस काल के फ्रांसीसी साहित्यकारों में रब्लास एवं माण्टेन प्रमुख हैं। प्रमुखफ्रांसीसी लेखकों में माण्टेन का नाम भी अग्रणी है। मॉण्टेन ने सरल व सुबोध फ्रेंच भाषा में मैत्री, शासन तन्त्र, शिक्षा एवं युद्ध आदि विषयों पर निबन्ध लिखे। लेखन एवं चिन्तन में यह वाल्टेयर का अग्रगामी था। उसे प्रथम आधुनिक व्यक्ति भी कहा जाता है।

उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य यूरोपीय देशों के साहित्य पर भी पुनर्जागरण का प्रभाव पड़ा। हालैण्ड का इरैक्मस अपने युग का एक प्रमुख मानववादी व साहित्यकार था। अध्ययन की इच्छा से उसने विभिन्न देशों का भ्रमण किया।

कला के क्षेत्र में प्रगति रू पुनर्जागरण काल में न केवल साहित्य को वरन कला को भी नया रूप प्रदान किया गया। मध्यकाल में कला का जीवन से कोई सम्बन्ध नही था। किन्तु पुनर्जागरण काल में कला का स्वरूप अधिक यथार्थवादी हो गया। यद्यपि कला के लिये अभी भी धार्मिक विषयों का चयन किया जाता मानवीयता पर अधिक बल दिया जाने लगा।

किन्तु अब चित्रकला रू पुनर्जागरण काल में सर्वाधिक विकास चित्रकला के क्षेत्र में हुआथा। मध्यकाल में ईसा व मरियम से सम्बंधित धार्मिक चित्र ही बनाये जाते थे किन्तु अब चटक रंगों में मानवीय चित्र भी बनाये जाने लगे।

सर्वप्रथम इटली के जियटों ने मानव व प्रकृति पर चित्र निर्मित किये। जियटो को षचित्रकार का जन्मदाताश कहा जाता है। अनेक कमियों के बावजूद उसकी चित्रकला ने अन्य चित्रकारों को प्ररेणा प्रदान की।

लियोनार्ड दि विन्सी एक प्रसिद्ध गणितज्ञ वैज्ञानिक, इंजीनियर, दार्शनिक, संगीतकार एवं चित्रकार सब एक साथ था। उसकी चित्रकारी में सादगी तथा प्रकाश व छाया रंगों का उपयुक्त चयन देखने को मिलता है। उसके प्रसिद्ध चित्र लारट सपर एवं मोनालिसा है।

मइकेल एंजेलो एक चित्रकार मूर्तिकार, स्थापत्यकार, इंजीनियर, एवं कवि था। वह मनुष्य को सृष्टि की सर्वाधिक सुन्दर कृति मानता था। उसने लगभग 145 चित्र निर्मित किये। रोम के सिस्टाइन गिरजाघर की छत पर निर्मित बाइबिल के दृश्य उसके कौशल एवं प्रतिभा का स्पष्ट प्रमाण है। सन् 1541 ई. में चर्च की इसी पर उसका एक चित्र लास्ट जजमेन्ट सर्वश्रेष्ठ कृति है। जिसे पूरा करने में 8 वर्ष लगे।

मूर्तिकला – इस काल में दोनोंतेल्लो, लारेन्जो गिवेर्टी एवं माइकेल एन्जेलो जैसे महान मूर्तिकार हुए हैं। इस काल की अन्य कलाओं की तरह मूर्तिकला भी धर्म के बन्धन से मुक्त हो गई थी।

स्थापत्य कला रू मध्ययुग में गोधिक शैली के आधार पर भवनों का निर्माण किया गया। किन्तु पुनर्जागरण काल में जिस नवीन शैली का जन्म हुआ उसमें यूनानी रोमन अरबी शैलियो का समन्वय किया गया। इस शैली का प्रारम्भ इटली से होकर अन्य देशों में भी इसका प्रसार हो गया। इस शैली का प्रवर्तक बूनेलेस्की था। इसमें गुम्बदों, मेहराबों व स्तम्भों को प्रधानता दी गई। सोलहवीं शताब्दी में इस शैली का सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थापत्यकार माइकेल एन्जेलो था। उसने राकेल के साथ मिलकर रोम में सैंट पीटर के गिरजाघर का निर्माणकिया।

इस काल की स्थापत्य के प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं– लन्दन का सन्तपाल का गिरजाघर, पेरिस का लूबे प्रसाद तथा स्पेन का इस्कोरियल का प्रसाद आदि।

संगीत कला – मध्यकाल में गिरजाघरों में संगीत वर्जित था। अतः संगीत का अधिक विकास न हो सका। किन्तु मार्टिन लूथर द्वारा चलाये गये नवीन धर्म में गीतों का समावेश किया गया। गिओवानी पालेस्ट्राइना इटली का विख्यात गायक था। 1554 ई. में उसने सामूहिक संगीत पर रचना प्रकाशित कराई। उसने गिरजाघरों की प्रार्थना के लिये स्वर लिपित तैयार की जिसे पोप ने स्वीकार किया।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पुनर्जागरण काल में सांस्कृतिक जीवन में अनेक नवीन प्रयोग किये गये। मनुष्य ईश्वर केन्द्रित सभ्यता से मानव–केन्द्रित सभ्यता की ओर अग्रसर हुआ। इस काल में सांस्कृतिक जीवन में जिन नवीन प्रवृत्तियों की शुरूआत हुई वे आने वाले समय का आधार सिद्ध हुई।

नागरिक अधिकार आन्दोलन

विभिन्न देशों में नागरिक अधिकार आन्दोलन – पुनर्जागरण काल में राजनीतिक क्षेत्र में भी नवीन प्रवृत्तियों का विकास हुआ। पोप के राजनीतिक हस्तक्षेप को अनुचित बताया

जाने लगा। इसके अतिरिक्त जनता की शक्तियों एवं अधिकारों की ओर भी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ। मार्सिग्लियो प्रथम व्यक्ति था जिसने जनसत्ता का समर्थन किया।

इंग्लैण्ड में नागरिक अधिकारों की माँग नागरिक अधिकारों की माँग संबंधी आन्दोलन सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में प्रस्फुटित हुआ। यह आन्दोलन राजा जॉन (1199–1216) ई. के समय हुआ। वह एक आत्याचारी शासक था जिसके कारण जनता में विरोध करना प्रारम्भ किया। नागरिकों अधिकारों से सम्बंधित एक माँग पत्र तैयार किया गया जिसे श्मैग्नाकार्टश अथवा श्दि ग्रेट चार्टर कहा गया। राजा ने विवश होकर 15 जून 1215 ई. को इसे स्वीकार भी कर लिया इसमें कुल 63 धारायें थी जिनसे यह सिद्ध हो गया। कि शासकों के साथ–साथ जनता के बीच कुछ अधिकार हैं यह सिद्धांत आज भी इंग्लैण्ड की संसदीय व्यवस्था का मूलभूत तत्व है यह महाधिकार पत्र ब्रिटिश इतिहास में जन अधिकार सुरक्षा की आधारशिला माना जाता है।

इंग्लैण्ड में नागरिक अधिकारों की माँग से संबंधित दूसरा अधिकार पत्र चालर्स प्रथम (1625–1649) ई. के शासन काल में अस्तित्व में आया।

इस अधिकार सत्ता की प्रमुख मांगे निम्नलिखित थीं–

1. संसद की स्वीकृति के बिना प्रजा पर कोई कर न लगाया जाये।

2. बलपूर्वक किसी से भी कर्ज या उपहार न लिया जाये।

3. लोगों के घरों में उनकी इच्छा के विरुद्ध सैनिक न रखे जायें।

4. शान्ति के समय सैनिक कानून का प्रयोग न किया जाये।

5. बिना कारण बताये अथवा बिना अपराध सिद्ध किये किसी को कैद न किया जाये।

सन् 1642 ई. में राजा व संसद के मध्य युद्ध पुनः आरम्भ हो गया। ग्रहयुद्ध एक धार्मिक एवं राजनीतिक संघर्ष था। जिसमें धर्म की आड़ में राजनीतिक एवं वैधानिक स्वतंत्रता का युद्ध लड़ा जा रहा था। इंग्लैण्ड के इतिहास में इस ग्रहयुद्ध को प्यूरिटन क्रांति के नाम से पुकारा गया। 1648 ई. में चार्ल्स को गिरफ्तार करने के साथ ही ग्रहयुद्ध समाप्त हो गया। 1649 ई. में चार्ल्स को मृत्युदंड दे दिया गया। विश्व इतिहास में यह प्रथम उदाहरण था जबकि जनता के प्रतिनिधित्व ने संसदीय विकास में बाधक बनने वाले निरंकुश शासक को अपने मार्ग से हटा दिया किन्तु 1653 ई. में क्रामवैल ने पुनः निरंकुश शासन की स्थापना की।

क्रामवैल शासन (1653–1658 ई.) की अग्रलिखित नीतियों ने जनता को अप्रसन्न कर दिया–

1. जुआ, पशु–पक्षियों की लड़ाईयाँ एवं नाचगाने पर प्रतिबंध लगा दिया।

2. नगरपालिकाओं में परिवर्तन किया गया।

3. कुछ विशेष लोग अदालत में जूरी के सदस्य नियुक्त किये गये।

4. अतिरिक्त करों का बोझ डाला गया।

5. समाचार पत्रों का दमन कर दिया गया।

सन् 1654 ई. में ससंद में क्रामवैल से राजा का पद स्वीकार करने एवं राज्य परिषद को मांग करके संसद के द्वितीय सदन के मनोनयन का सुझाव दिया। वस्तुतः इसके द्वारा संसद ने सैनिक सरकार को नागरिक शासन में रूपान्तरित करने का प्रयास किया। दुर्भाग्यवश क्रामवैल इससे सहमत न हो सका। उसने संवैधानिक शासक बनने का सुअवसर खो दिया। सन् 1668 ई. में क्रामवैल की मृत्योपरान्त उसके पुत्र रिचई को सरंक्षक व सेनापति स्वीकार कर लिया गया। किन्तु 1659 ई. में संसद की बैठक के दौरान असैनिक विवाद उत्पन्न होने पर रिचई ने त्यागपत्र दे दिया। तत्पश्चात् 1660 ई. में चार्ल्स के नेतृत्व में पुनः राजतंत्र की स्थापना की गई।

अमेरिका ने नागरिक अधिकारों की माँग – सत्रहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड तथा अन्य यूरोपीय शक्तियों ने अमेरिका का उपनिवेशीकरण प्रारम्भ किया। अठारहवीं शताब्दी में यहाँ लगभग 13 अंग्रेजी बस्तियाँ थीं। 1776 ई. में पूर्व की कतिपय घटनाओं ने इन अमेरिकी उपनिवेशों को क्रान्ति के लिए प्रेरित किया। अमेरिका में तत्कालीन दार्शनिक जेम्स ओटिम का क्रान्ति को प्रज्जवलित करने में विशेष योगदान रहा। कतिपय अंग्रेजी नीतियों के कारण भी इन उपनिवेशों की जनता के असन्तोष में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। परिणामतरू 4 जुलाई 1776 ई. को 13 बस्तियों ने इंग्लैण्ड में स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। घोषणा पत्र में यह भी कहा गया कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को समान बनाया है। ईश्वर ने उन्हें कुछ ऐसे अधिकार दिये हैं जिन्हें उनसे कोई छीन नहीं सकता। सत्ता का स्रोत जनता को स्वीकार किया गया।

3 सितम्बर 1783 ई. को पेरिस की सन्धि के अनुसार इंग्लैण्ड ने इन अमेरिकी बस्तियों की स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान कर दी। अमेरिका स्वतंत्र हो गया तथा 21 जून 1788 ई. को अमेरिका का नवनिर्मित संविधान लागू हो गया। इस संविधान के द्वारा अमेरिका के नागरिकों को अग्रलिखित अधिकार प्रदानकिये गये– विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता धर्म की स्वतंत्रता तथा कानून के अनुसार न्याय प्राप्ति का अधिकार है।

अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम विश्व इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसने ही 1789 ई. की फ्रांसीसी क्रांति की आधार शिला रखी तथा अन्य यूरोपीय देशों को भी राष्ट्रवादी आन्दोलन के लिये प्रेरित किया।

फ्रांस में नागरिक अधिकारों की मांग रू फ्रांस में 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में क्रान्ति का सूत्रपात हुआ इस क्रान्ति के लिये अग्रलिखित कारण उत्तरदायी थेविकृत सामन्ती व्यवस्था, शिक्षित मध्यम वर्ग, योग्य शासक का अभाव, दार्शनिकों का प्रभाव, जनता की सुधारों की इच्छा सैनिक असन्तोष आर्थिक कष्ट तथा अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव आदि।

1789 ई. को क्रान्ति के परिणामस्वरूप 27 अगस्त 1789 ई. को संविधान सभा ने मानव अधिकारों की घोषणा की जिसमें कहा गया कि मनुष्य के कुछ नैसर्गिक अधिकार जो उसे जन्म से ही प्राप्त हो जाते हैं। इसकी प्रेरणा अमेरिकी उदाहरण से प्राप्त हुई। इस घोषणा पत्र का इतिहास में वही महत्व है जो इंग्लैण्ड में मैग्नाकार्टा का तथा अमेरिका में स्वतंत्रता

की घोषणा का है। इस घोषणा पत्र ने नागरिक अधिकारों के क्रमिक विकास का सूत्रपात किया।

सोवियत संघ ने नागरिक अधिकारों की माँग – उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप के प्रमुख देशों में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना हो चुकी थी। किन्तु रूस ने नागरिकों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। वहाँ की जनता को जार का निरंकुश शासन असहनीय था। अतः जनता द्वारा सुधारों की माँग की जाने लगी। 22 जनवरी 1905 ई. को लगभग डेढ़ लाख मजदूरों ने जार के समक्ष अपनी राजनीतिक व औद्योगिक माँगे रखी। शान्तिपूर्ण प्रदर्शन के बावजूद जार के सैनिकों ने इन लोगों पर आक्रमण कर दिया। 1905 ई. की यह श्खूनी रविवार की घटना इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। परिस्थिति नियंत्रण के बाहर होने पर जार ने 30 अक्टूबर 1905 ई. को शासन सुधारो की घोषणा कर दी गयी। इस घोषणा के द्वारा जनता को विभिन्न नागरिक अधिकार प्रदान कियेगये। किन्तु इन अधिकारों का जारशाही द्वारा हनन किया जाता रहा। अन्ततः 1917 ई. की प्रसिद्ध रूसी क्रान्ति हुई। इसके परिणामस्वरूप जारशाही के निरंकुश शासन के अन्तर्गत कतिपय स्वतंत्रता संबंधी घोषणायें की गई। भाषण, प्रेस, लेखन आदि पर लगे प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया गया। मजदूरों को संघ बनाने का अधिकार दिया गया। चर्च के विशेषाधिकार समाप्त कर दिये गये।

इस प्रकार नागरिक अधिकारों की माँग सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में की गई। इंग्लैण्ड के अधिकार–पत्र मैग्नाकार्टा के आधार पर ही अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम की नींव टिकी थी। तदुपरान्त फ्रांसीसी क्रान्ति ने यूरोप तथा विश्व के अन्य देशों को स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व एवं अन्य नागरिक अधिकारों की माँग के लिए प्रेरितकिया।

अध्याय–15

नागरिक अधिकार प्रजाति पार्थक्य और नारीवाद

प्रजाति पार्थक्य (APARTHEID) और नारीवाद Feminism

विश्व के विभिन्न देशों में नागरिक चेतना जाग्रत होने के परिणामस्वरूप नागरिक अधिकारों की मांग की जाती रही है। उन्हें नागरिक अधिकारों की प्राप्ति भी हुयी किन्तु यह दुःख का विषय है कि इन्हीं देशों में नागरिकों का एक वर्ग प्रजाति श्पार्थक्यश की भावना के कारण इन अधिकारों से वंचित रहा।

अमेरिका में प्रजाति पार्थक्य – अमेरिका स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अमेरिका के 13 उपनिवेशों ने 4 जुलाई 1776 ई. को अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। घोषणा में कहा गया था कि सब मनुष्य जन्म से बराबर है। किन्तु यह कथन श्वेत लोगों पर ही लागू होता था। स्वतंत्रता के उपरान्त भी अश्वेतों की स्थिति दासों के समान बनी रही। इन अश्वेतों को स्वतंत्रता का अधिकार दिलाने के लिये अमेरिका के उत्तरी एवं दक्षिणी राज्यों के मध्य 4 वर्ष तक संघर्ष चलता रहा। अमेरिकी इतिहास में यह संघर्ष उत्तर व दक्षिण का युद्ध, ग्रहयुद्ध, भाई–भाई का युद्ध आदि नामों से जाना जाता है। अन्त में अब्राहीम लिंकन के अथक प्रयासों से 1863 ई. में दास प्रथा की समाप्ति की कानूनन घोषणा कर दी गयी।

यूरोपीय देशों में प्रजाति–पार्थक्य – प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त पेरिस की शान्ति परिषद के समक्ष सर्वाधिक विकट समस्या थी विदेशों में निवास करने वाले अल्पसंख्यकों की रक्ष करना है। यह समस्या पोलैण्ड, चेकोस्लाविया आस्ट्रिया, तुर्की, बुल्गारिया व हंगरी से संबंधित थी। 19वीं शताब्दी की समाप्ति तक यूरोप के लोगों में अपने वर्ण व नस्ल की उत्कृष्टता की भावना बहुत प्रबल थी। ये लोग वर्ण एवं नस्ल की दृष्टि से एशिया एवं अफ्रीका वासियों को हीन समझते थे। किन्तु युद्ध की आवश्यकता से विवश होकर इन देशों से युद्ध में सहायता प्राप्त की गई। युद्ध में अश्वेतों ने श्वेतों के समान ही शौर्य दिखाया जिसकेकारण श्वेतों की सर्वोच्चता का विचार निराधार सिद्ध हो गया। अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस विचार को महत्व दिया जाने लगा कि सब नस्लें समान हैं, उत्कृष्ट या हीन नहीं।

अफ्रीका में प्रजाति– प्रार्थक्य – अफ्रीका में पूयोपियनों द्वारा उपनिवेशों की स्थापना का आरम्भ उन्नसवीं शताब्दी के पिछले 25 वर्षों के भीतर हुआ था, 19वीं शताब्दी के अन्त तक लगभग सारा अफ्रीका उपनिवेशवाद के अधीन हो गया। इस प्रकार अफ्रीका में यूरोपीय अधिपात्य की स्थापना हो गई तथा श्वेतों द्वारा अफ्रीका वासियों का शोषण किया जाने लगा। 1 अप्रैल 1990 में नामाबिया की स्वतंत्रता के साथ ही अफ्रीका में यूरोपीय उपनिवेशवाद लगभग समाप्त हो गया। अब प्रजाति–पार्थक्य की समस्या से निपटना शेष था। दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मण्डेला के नेतृत्व में ए.एन.सी. प्रजाति–पार्थक्य के विरुद्ध युद्ध में सफलता प्राप्त की।

दक्षिण अफ्रीका सरकार ने अब नस्लवादी कानूनों को समाप्त कर दिया है। सन् 1994 ई. में दक्षिण अफ्रीका में श्वेत अल्पसंख्यक शासन समाप्त हो गया तथा अश्वेत नेता नेल्सन

मण्डेला राष्ट्रपति निर्वाचित हुये। इस प्रकार श्वेतों व अश्वेतों की साझी सरकार बनी तथा रंगभेद व नस्लवाद की समाप्ति हुयी।

नारीवाद (स्त्री अधिकार) Feminism

सन् 1815 ई. से 1914 ई. के मध्य परिश्चमी यूरोप में उदारवाद एवं प्रजातंत्र का विकास हुआ। उदारवाद की शुरूआत राजनीतिक क्षेत्र में हुई किन्तु शनैः शनैः आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र भी इसकी परिधि में आ गये। यूरोपीय पुनर्जागरण एवं धर्म सुधार आन्दोलन ने भी उदारवाद के जन्म एवं विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया। उदारवादी चेतना के परिणामस्वरूप स्त्रियों में भी जागृति आई।

उदारवादी चेतना के कारण इंग्लैण्ड में निरंकुश शासन की समाप्ति हुयी तथा मंत्रिमण्डलीय प्रथा का विकास हुआ विभिन्न वर्गों द्वारा स्वतंत्रता एवं समानता के आधार पर अपने अधिकारों की मांग की गई। इस आधार पर 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में स्त्रियों ने पुरुषों के साथ समानता की मांग आरम्भ की। स्त्रीशिक्षा का प्रसार भी इसी काल में हुआ था। जे०एस०मिल ने स्त्रियों को मताधिकार दिलाने के अथक प्रयास किये तथा इस सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें लिखी।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान लाखों पुरुषों को अपने व्यापार को छोड़कर युद्ध मेंसम्मिलित होना पड़ा। अतः उनके स्थान पर कारखानों, दफ्तरों उद्योगों आदि में स्त्रियों ने जाना आरम्भ किया। अभी तक वे गृहस्थी के संकुचित दायरे में थी किन्तु अब घरों से बाहर आकर उन्होंने सामाजिक विकास में योगदान दिया। कार्यक्षमता के आधार पर उनके आत्म–विश्वास में वृद्धि हुई तथा उन्हें समाज में अपने महत्व का ज्ञान हुआ। परिणामतः स्त्रियों ने अपने राजनीतिक अधिकारों की मांग की इसी के परिणामस्वरूप विभिन्न देशों की स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त हुआ।

रूस में स्टालिन ने भी स्त्रियों की स्थिति सुधारने के प्रयास किये। जिसके परिणामस्वरूप आज रूस में 50 प्रतिशत चिकित्सक स्त्रियाँ हैं।

अध्याय–16

समाजवादी गुट का विघटन

राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन

द्विध्रुवीय से एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में ध्रुव से तात्पर्य उच्च शक्ति से है। उच्च शक्ति का निर्धारण सामान्यतया सैन्य शक्ति के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार उच्च शक्ति से सम्पन्न राज्य शक्ति संतुलन को प्रभावित करने की क्षमता रखता है।

इसी प्रकार द्विध्रुवीकरण वह व्यवस्था है जिसमें दो महाशक्तियों का अस्तित्व होता है तथा जिनकी शक्तियाँ एवं क्षमतायें लगभग समान होती हैं। प्रत्येक शक्ति के अपने–अपने गुट होते हैं द्विध्रुवीकरण की व्यवस्था द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अस्तित्व मे आई।

द्विध्रुवीकरण का स्वरूप –द्विध्रुवीकरण के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था स्पष्टतः दो ब्लाकों में विभक्त होती हैं। दोनों ब्लाकों का नेतृत्व एक–एक महाशक्ति के द्वारा किया जाता है। शेष राज्य समर्थन के आधार पर इन दोनों ब्लाकों में सम्मिलित हो जाते हैं, जिसके कारण विश्व व्यवस्था दो गुटों में विभक्त हो जाती है। प्रत्येक ब्लॉक दूसरे गुट को शक्ति को कम करने का प्रयास करता है। इस प्रकार द्विध्रुवीकरण की राजनीति परस्पर टकराव की राजनीति होती है।

द्वितीय विश्व युद्ध में यूरोपीय मित्र राष्ट्रों को अत्यधिक हानि का सामना करना पड़ा। जिसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर केवल दो महाशक्तियाँ रह गई। अमेरिका तथा सोवियत संघ। ऐसी स्थिति में अमेरिका अपनी अलगाववाद की नीति छोड़ने एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने के लिये विवश हो गया। अमेरिका व सोवियत संघ के मध्य राजनीतिक एवं आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता प्रारम्भ हो गयी। परिणामस्वरूप दोनों शीत युद्ध प्रारम्भ हो गया। अमेरिका ने मार्शल योजना के द्वारा तथा सोवियत रूस ने कोमिकॉनश द्वारा अपना प्रभाव बढ़ाना आरम्भ कर दिया। विश्व दो खेमों में बंट गया। 1945 ई. से 1955 ई. तक का समय द्विध्रुवीकरण का दशक कहलाता है। इस समय विश्व के लगभग सभी राष्ट्र इन दोनों महाशक्तियों में से किसी एक पर निर्भर थे।

एकल दृध्रुवीय व्यवस्था का उदय –सन् 1987 ई. के पश्चात् विश्व संरचना में एक बार पुनः महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर हुये जिसके कारण बहुध्रुवीकरण व्यवस्था एकल द्विध्रुवीय व्यवस्था से रूपान्तरित हो गई। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इस एकल ध्रुवीय व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषतायें दृष्टिगोचर हुई–

1. सोवियत संघ के विघटन के उपरान्त देश अब संघ के गणराज्यों में से कोई अथवा विश्व का कोई अन्य देश भी सोवियत संघ का स्थान नहीं ले सका। अतः विश्व राजनीति में अमेरिका ही एकमात्र महाशक्ति रह गया था।

2. चीन, क्यूबा, वियतनाम जैसे साम्यवादी देश अब साम्यवादी गुट को पुनःजीवित करने के इच्छुक नहीं रह गये थे।

3. संयुक्त राष्ट संघ पर अमेरिका का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया।

4. यूरोपीय देश अपनी आन्तरिक समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त हो गये।

5. जापान एवं जर्मनी आर्थिक शक्तियों में तो उभर कर आये किन्तु सैन्य शक्ति के रूप में नहीं।

6. अमेरिका ने वारसा पैक्ट की समाप्ति के बाद भी नाटो को कायम रखातथा नाटो के माध्यम से अमेरिका यूरोप में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिये एक उपकरण के रूप में प्रयोग किया।

7. साम्यवादी गुट के विघटन एवं खाड़ी युद्ध में सफलता के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अमेरिका का वर्चस्व स्थापित हो गया।

8. साम्यवादी विचारधारा की क्षति होने के बाद अब विश्व व्यवस्था एक ही विचारधारा श्उदारवादी लोकतन्त्रीय विचारधारा की ओर बढ़ गया।

उक्त परिस्थितियों के कारण एकल ध्रुवीय व्यवस्था का उदय हुआ।

सन् 1991 ई. के पश्चात् बहुध्रुवीयकरण पूर्णतः एकल ध्रुवीय व्यवस्था में परिवर्तित हो गया। 20वीं शताब्दी की समाप्ति तक यही व्यवस्था कायम रही किन्तु अब पुनः बहुध्रुवीयकरण की ओर झुकाव उत्पन्न हो रहा है। रूस व चीन अपनी शक्ति में निरन्तर वृद्धि कर रहे हैं। इसके अलावा भारत, जापान, जर्मनी सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हैं।

वैश्वकीरण

आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभाव – वर्तमान में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाले शब्द वैश्वीकरण को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद व्याप्त है। विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोण के आधार पर वैश्वीकरण को परिभाषित करने का प्रयास किया है। एडवर्ड एस०हरमन के अनुसार विश्वीकरण विभिन्न सीमाओं के आर पार का पेरिट (कम्पनियों) के फैलाव की एक सक्रिय प्रक्रिया भी है तथा साथ ही पार सीमा सुविधाओं और आर्थिक सम्बंधों की एक संरचना भी है जिसका लगातार विकास हो रहा तथा जो ज्यो–ज्यों आगे बढ़ रही है त्यों–त्यों परिवर्तित हो रही है।

वैश्वीकरण केवल आर्थिक प्रक्रिया मात्र या संचारों से सम्बन्धित प्रक्रिया नही है। यह वस्तुतः विश्व के सभी भागों में रहने वाले लोगों के मध्य सामाजिक, आर्थिक व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों को बढ़ाने की व्यापक प्रक्रिया है। यह विचारधारा सबके लिये स्वतंत्रता अन्तर्राष्ट्रीयवाद मुक्त व्यापार एवं मुक्त आर्थिक सम्बंधों की पक्षधर है। इसके अंतर्गत ऐसे नियमों एवं विधियों को क्रियान्वित किया जाता है। जिससे विश्व के सभी लोगों का सामाजिक व आर्थिक एकीकरण सम्भव हो सकते हैं। वैश्वीकरण एवं अन्तर्राष्ट्रीय के मध्य अन्तर स्पष्ट करते हुए वेयलिस तथा स्मिथ ने विचार व्यक्त किये हैं कि जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्रों के मध्य सहयोग के क्षेत्र तथा गहनता के शक्तिशाली बनाने की प्रक्रिया है वहाँ वैश्वीकरण का अर्थ है– मुक्त विश्व व्यवस्था जिसमें मुक्त विश्व व्यापार विश्व बाजारों में

पहुँच की स्वतंत्रता तथा विश्व के सभी लोगों के मध्य सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सम्बन्धों को बढ़ाने की व्यापक प्रक्रिया है।

वैश्वकीरण के पक्ष में तर्क रू वैश्वीकरण या विश्वीकरण के समर्थक इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं–

1. विकास प्राप्ति में सहायक विश्वीकरण के समर्थकों का मत है कि यह प्रक्रिया विश्व में सभी लोगों के विकास में सहायक है। अनवरत् चलने वाली विकास की प्रक्रिया में भी यह सहायक है।

2. एकता का प्रतीक रू शविश्वीकरणश मूल्यों का एक चमत्कारिक रूप है यह अन्तर्राष्ट्रवाद एवं देशों में एकता का प्रतीक है। राष्ट्रवाद तथा सुरक्षावाद जैसे नकारात्मक सिद्धांतो का यह विरोध करता है।

3. अन्तर्राष्ट्रीय अन्तनिर्भरता का विकास रू विश्वीकरण एक नितान्त आवश्यकता है। यह विद्यमान तथा निरन्तर वृद्धि कर ही अन्तर्राष्ट्रीय अन्तनिर्भरता का स्वाभाविक विकास है इससे अन्तर्राष्ट्रीय अन्तनिर्भरता तथा राष्ट्र राज्य व्यवस्था को भी चुनौती मिल रही है।

4. विकासशील प्रक्रिया रू विश्वीकरण की प्रक्रिया पूर्ण विकसित नही हुई है। एकबार जब यह प्रक्रिया पूर्ण होकर बचे अर्थों में विश्वपरक बन जायेगी तो यह पूर्ण विश्व के निरन्तर विकास का साधन बनेगी।

वैश्वीकरण के विपक्ष में तर्क रू विश्वीकरण की आलोचना करते हुये आलोचक निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं–

1. विकसित देशों की विचारधारा रू आलोचकों का कहना है कि विश्वीकरण व्यापारिक कम्पनी का एक कार्यक्रम है या फिर अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने की विकसित देशों की विचारधारा है। सीमा पार व्यापार एवं निवेश कमजोर देशों के लिये आर्थिक दृष्टि से हानिकारक होगा। यह व्यवस्था शक्तिशाली एवं कमजोर दोनों प्रकार के देशों में लोकतंत्रीय नियंत्रण को शिथिल कर देगा। देशों की आर्थिक व राजनीति व्यवस्था पर व्यापार का नियंत्रण स्थापित हो जायेगा।

2. वित्तीय तरलता रू विश्वीकरण की एक अन्य विशेषता वित्तीय तरलता में वृद्धि है। विभिन्न कारणों से वित्तीय संकट अधिकाधिक घातक एवं चुनौतीपूर्ण होते जा रहे हैं। निजीकरण तथा नियमन व्यवस्था की वृद्धि से सरकार एवं गैर–नियमनकृत वित्तीय शक्तियों के मध्य अन्तर में वृद्धि हो रही है। साथ हीविश्व स्तर पर वित्तीय संकट के आने की सम्भावनायें भी बढ़ गई हैं।

3. गैर–लोकतन्त्रीय विश्वीकरण की प्रक्रिया विशिष्ट वर्ग के हितों की संरक्षक रही है। वास्तः लोकतांत्रिक प्रतीक होने पर भी अपने आन्तरिक स्वरूप में यह प्रक्रिया गैर–लोकतन्त्रीय है। वेतनों को सीमित करके, गैर–योजनाबद्ध प्रभावों के द्वारा एवं कल्याणकारी राज्य की भूमिका को कम करके विश्वीकरण में शनैः शनैः लोकतंत्र को कमजोर किया है। इस प्रक्रिया में अल्पसंख्यक व्यापारियों के राज्य पर दृढ़ नियन्त्रण को

प्रोत्साहित किया है। साथ ही बहुसंख्यकों की मांगों से प्रतिराज्य के दृष्टिकोण को उपेक्षित बना दिया है।

4. तृतीय विश्व के देशों की अर्थव्यवस्था की क्षति रू विश्वीकरण की प्रक्रिया ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को एक नया संरक्षणवादी व्यवहार करने की योग्यता प्रदान की तथा इससे सभी देशों, विशेषकर तृतीय विश्व के देशों की अर्थव्यवस्थाओं को दुगुनी हानि प्रारम्भ हो गयी।

वैश्वीकरण या विश्वीकरण को सफल बनाने हेतु सुझावरू विश्वीकरण में विद्यमान दुर्बलताओं के बावजूद यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि विश्वीकरण एक स्वाभाविक एवं आवश्म्भावी प्रक्रिया है। अतः आवश्यकता इसे समाप्त करने की नहीं वरन् इसमें सुधार लाने की है। इस प्रक्रिया में सुधार हेतु अग्रलिखित सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं–

1. विश्वीकरण या वैश्वीकरण की प्रक्रिया के नाम पर किये जा रहे कतिपय स्थानीय एवं संकीर्ण लक्ष्यों को विश्वस्तरीय आन्दोलनों के माध्यम से नियन्त्रित किया जाये।

2. मुक्त व्यापार नीतियों को दबावों से मुक्त करके अपनाया एवं क्रयान्वित किया जाये।

3. विश्व सहयोग में वृद्धि हेतु कार्यरत विभिन्न क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में अधिक सक्रियता से एवं कुशलता पूर्वक कार्य करना चाहिये।

4. वैश्वीकरण से सम्भावित खतरों को विश्व स्तर पर सामूहिक प्रयासों एवं सहयोग के द्वारा करने का प्रयास किया जाये।

5. विश्व–स्तर के प्रशासन हेतु नई संरचनाओं की स्थापना की जाये।

6. वैश्वीकरण के पुनर्निमाण के द्वारा एक नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का विकास किया जाये।

7. वैश्वीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप राज्यों एवं व्यक्तियों पर होने वाले हानिकारक, सामाजिक, आर्थिक वातावरणीय एंव सांस्कृतिक प्रभावों को समाप्त किया जाये।

इस प्रकार वैश्वीकरण को अन्तर्राष्ट्रीय विकास एवं समृद्धि की एक श्रेष्ठ प्रक्रिया के रूप में अपनाया जा सकता है।